वर्ष २५ **वैदिक धर्म** अंक २

क्रमांक १८१ : फरवरी १९६४

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.– ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

रक्षक देवोंसे प्रार्थना

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये
ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं
ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥

ऋ. १।३५।१

मैं (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (प्रथमं अग्निं ह्वयामि) सबसे पहले अग्निको बुलाता हूँ, फिर (अवसे) रक्षणके लिए (इह) यहां (मित्रावरुणौ ह्वयामि) मित्र और वरुणको बुलाता हूँ । (जगतः निवेशनीं रात्रीं) संपूर्ण जगत्को सुलानेवाली रात्रीका आह्वान करता हूँ और (ऊतये) अपनी रक्षाके लिए (देवं सवितारं ह्वयामि) दिव्यगुणवाले सूर्यको बुलाता हूँ ।

सब देवोंको मैं अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ । वे हमेशा मेरे पास रहकर मेरी रक्षा करें ।

शिवका दान करो तुम हमको,
पाप हमारे दूर हटाओ ।
वासरके अधिदेव दिवाकर,
निशिके वरुणदेव सुख लाओ ।
आमन्त्रित हम करें आपको,
आप हमारा तेज बढाओ ।
गोदीमें बिठलाकर रजनी,
हमें संरक्षण दान करो ।
सदा प्रकाशक सूर्य देव तुम,
हमें सुरक्षा दान करो ।

—श्री सुन्दर बाँवरदास "ओम"

वैदिक ऋचाओंकी ओजस्विता

(लेखक— श्री पं. वेदव्रत शर्मा, शास्त्री)

[गताङ्कसे आगे]

'यह जीव-आत्मा न कभी उत्पन्न होती है और न कभी मरती है। और न कभी होकर होनेवाली होती है। यह अजायमान, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर यह नहीं मरती।'

शरीरके उत्पन्न होनेपर यह अज्ञानवश अपनेको पैदा हुआ समझती है और शरीरके नष्ट होनेपर यह अपनेको मरी हुई सोचती है। वास्तवमें आत्मा न उत्पन्न होती है और न मरती है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (गीता)

'जैसे मनुष्य अपने पुराने वस्त्रको उतारकर फेंक देता है और नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा अपने जीर्ण-शरीरको त्याग कर नवीन शरीर धारण करती है।' पूर्व शरीरका त्याग ही मृत्यु है और दूसरे शरीरका ग्रहण ही जन्म है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
(गीता)

'आत्माको शस्त्र छेद नहीं सकते। आग इसे जला नहीं सकती। पानी इसे गला नहीं सकता। हवा इसे सुखा नहीं सकती।' आत्मा अजर और अमर है। शरीर ही जलता, सूखता और भीगता है आत्मा इन सब आघातोंसे परे है।'

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥
(गीता)

"देहमें रहनेवाली-जीवात्मा नित्य है और अवध्य है। इसलिए जितने भी शरीरधारी प्राणी हैं, सबको नित्य और अवध्य समझो।" शोक करना व्यर्थ है। ज्ञानी लोग इस तथ्यको समझ कर ही दुःखी नहीं होते।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥
(गीता)

"संसारमें जो पैदा होता है वह अवश्य ही मरता है और जो मरता है वह अवश्य ही पैदा होता है। इसलिए जो अवश्यम्भावी है उसके लिए शोक करना अच्छा नहीं।"

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृत निश्चयः॥
(गीता)

"यदि तुम युद्धमें मारे जाते हो, तो स्वर्ग प्राप्त करोगे और यदि युद्धमें विजयी होते हो, तो पृथिवीका उपभोग करोगे। इसलिए हे अर्जुन! युद्ध करनेके लिए उठो और तैय्यार हो जावो।"

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः
करिष्ये वचनं तव॥ (गीता)

"सैनिक इस ज्ञानसे मोह महासागरको पार हो जाता है। उसे अपने कर्तव्यकी शुद्ध स्मृति होती है। सारे सन्देह मिट जाते हैं और वह युद्ध करनेके लिए खड़ा हो जाता है। अपने सेनानायकसे कहता है कि अब मैं तुम्हारे आदेशको कार्यरूपमें परिणत करूँगा।"

सैनिककी वीर-गर्जना

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजित् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्य-जित्।

अथर्व. ७।५।८०

'मेरे दायें हाथमें पुरुषार्थ है, कर्म-कौशल है और बायें हाथमें विजय है। मैं अपनी अदम्य वीरता एवं उत्साहसे शत्रुकी भूमि, गोधन, वाजिधन और स्वर्ण विजेता होऊँ।'

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम
धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ ऋ. ६।७५।२

'धनुषसे हम शत्रुओंकी गौओं और भूमियोंको जीतें, धनुषके बलसे हम बड़े बड़े संग्रामोंको जीतें। अपने धनुर्बलसे अपने सम्मुख आती हुई हर्ष और मदमें भरी हुई शत्रुसेनाओंको जीतें। हमारा धनुष शत्रुकी कामनाओंको नष्ट कर दे। धनुषके द्वारा सभी दिशाओंको जीतें।'

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

'न तो मैं राज्यकी कामना करता हूं और न सुखकी और न मोक्षकी ही इच्छा रखता हूं। केवल दुःखी प्राणियोंकी पीड़ाओंका नाश चाहता हूं।'

'राम-राज्यकी कामना'

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णुः रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्, योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ यजु. २२।२२

पद्यार्थ

ब्रह्मन्! सुराष्ट्र में हों, द्विज-ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों, अरि-दल विनाशकारी॥
होवें दुधारु गायें, पशु अश्व आशु-वाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही॥
बलवान् सभ्य-योद्धा, यजमान--पुत्र होवें।
इच्छानुसार वरषें पर्जन्य ताप धोवें॥
फल-फूलसे लदी हों, औषधि अमोघ सारी।
हो योग-क्षेमकारी स्वाधीनता हमारी॥ ×

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
ऋ. १०।१९१।१

प्रेमसे मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम कर्तव्य के मानी बनो॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।

'राष्ट्रके सब लोग सुखी हों। सब लोग रोग-रहित हों। सब एक दूसरेका कल्याण ही देखें, कल्याण ही चाहें और कल्याण ही करें। कोई भी हमारे राष्ट्रमें अन्न, वस्त्र, गृह और जीविकाकी कमीसे दुःखी न हो।

भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय॥

'हे राष्ट्र-पते! सभी जनता जनार्दनके लिए कल्याण ही कल्याण प्रदान करो।'

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम्
न्यायेन मार्गेण महीं महीशाः।
गो-ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

'कल्याणकी भावनासे शासक-गण प्रजाका पालन करें। राज्याधिकारी-वृन्द प्रजाके साथ न्यायोचित कर्तव्य करें। राष्ट्रके पशु और सज्जन-गणोंके लिए शुभ-कर्मोंका विधान किया जावे। सारे संसारके लोग भलीभांति सुखी हों।'

सैनिकोंका संकल्प

वन्दे मातरम् सेवे भ्रातरम्॥

× शब्दार्थ— द्विज = संस्कृत लोग; ब्रह्म= विद्वान्; राजन्य = सैनिक; यजमान-पुत्र = राष्ट्रकी सन्तानें; योग = अप्राप्तकी प्राप्ति; क्षेम = प्राप्तिकी सुरक्षा। महारथी = अक्षोहिणी सेनाका अध्यक्ष; ब्रह्मन् = राष्ट्र-पति या ईश्वर।

माँ के बोले तुमि अबले ' टैगोर '

हे ! माँ !! तुम्हें कौन अबला कहता है ?

समुद्र-वसने ! देवि ! पर्वतस्तनमण्डले !
विष्णु-पत्नि ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

' गांधी डायरीसे '

प्रथम सामरव माँ तव गगने ' टैगोर '

' हे ! माँ !! सर्व प्रथम तुम्हारे गगन-मण्डलमें साम-गान हुआ । '

हे ! वीर-मातः !!

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्॥

अथर्व. १२।१।६३

' हे जननि ! तू हमारी प्यारी-भूमि है। हे माँ ! कल्याण कारक सम्पत्तियोंसे मुझे सम्पन्न कर। हे क्रान्त-दर्शिनि देवि !! सूर्य और ज्ञान-विज्ञानके प्रकाशसे मुझे श्रीमान् एवं लक्ष्मीवान् बना। इनके द्वारा हम अपना योग-क्षेम प्राप्त करें। '

मातृ-गर्जना

यो मां जयति संग्रामे स मे भर्ता भविष्यति ।

' माँ ! तेरी यह गर्जना ठीक ही है कि जो तुझे संग्राममें जीत लेगा वही तेरा स्वामी होगा ' परन्तु जबतक देशका एक भी बच्चा जीवित है, किसकी हिम्मत है कि तेरी तरफ कोई आंख भी उठा ले ।

तभी तो आज कहती हो

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥

' जिस दिनके लिये क्षत्राणियाँ वीरोंको पैदा करती हैं, वह दिन अब आ गया है। '

यद्यपि वीर जवाहरने समझाया था कि—

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।
अप्रणाशेन वीराणामेतत् याचितुमागतः ॥

' चीनियों और भारतीयोंके वीरोंका नाश युद्धमें न हो और हमारी तुम्हारी हद्दका फैसला हो जाय, परन्तु चीनी दुर्योधन कब माननेवाला था। उसे तो अपनी शक्तिका गर्व था। '

तब उसने कहा था !!!

सूच्यग्रं न प्रदास्यामि विना युद्धेन केशव ।

' हे कृष्ण ! बिना घमासान युद्धके सुईकी नोकके बराबर भी भूमि न दूंगा। '

तब देशके वीरोंको वीर-जवाहरकी पुकार

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

गीता

वीरो ! आजादीकी रक्षाके लिये उठो ! चीनी-दुश्मनसे लडो। युद्धमें मर गये तो स्वर्गका सुख भोगोगे और यदि शत्रुको हराया तो आजादीका आनन्द लूटोगे।

भारतकी आजकी परिस्थिति किसी विशेष विवेचना या विवरणकी आवश्यकता नहीं रखती। अनेक बलिदानोंके द्वारा तथा अनेक वर्षोंके सतत प्रयाससे अर्जित भारतकी स्वाधीनता आज फिर खतरेमें है। आज हर भारतीयका कर्तव्य है कि वह आजादीकी इस जलती हुई मशालको बुझने न दे। प्रत्येक भारतीय आजाद है, क्योंकि वह एक आजाद वतनका वाशिन्दा है। यह शहीदोंका देश है, जो अपने देशकी स्वाधीनताके लिए मरना मिटना जानते हैं। ऐसे ही जाँनिसार देश प्रेमियोंके लिए महान् क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर ' आजाद ' ने लिखा था—

वही शाहे शहीदां है, वही है रौनके आलम ।
वतन पर देके जां जो, जंगके मैदां में सोता है ॥
उसीका नाम रौशन है, उसीका नाम बाकी है ।
कि जिस की मौत पर,
दुनियाँका हर इंसान रोता है ॥
जरा बेदार हो अब,
ख्वाबे गफलतसे जवानों तुम ॥
कि जिसमें जोर बाजू है,
वही आजाद होता है ॥
यही दुनियाँ से अब
इस सूरमा की रूह कहती है ।
गरीबोंको मिले रोटी, तो मेरी रूह सस्ती है ॥

मेरी कामना

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

जय-भारत

द्वितीय मुक्तिका

राज्यकी उत्पत्ति

मानव-समाज जबतक अपने स्वको अपनी ज्ञानप्रतिभासे अवलोकित करता रहा और जबतक मुक्ति-पथका पथिक बना रहा, तबतक वह अनेकतामें एकताके रूपको अपने स्वमें देखता रहा और आत्मवत् सब प्राणियोंके सुख दुःखको समझता रहा। इसलिए वह समत्व भावनासे अपने परायेके मायावी विचारोंसे मुक्त था। सब अपने थे, अतः भयका कोई प्रश्न ही नहीं था। क्योंकि भयका आधार तो परकी भावना ही होती है। उस समयका मानव-समाज मनसा-वाचा-कर्मणा स्वच्छ-भावनाओंवाला था। मानव-समाज आत्म-ज्ञानकी त्रिपथगासे परिषिक्त था। अतः वह पूर्ण विकसित था। उस समयका मानव 'कोऽहम्' से चल कर 'सोऽहम्' तक प्रयाण करता था। उस समय न राजाकी आवश्यकता थी, न राज्यकी। सब आत्म-राज्यमें रत थे।

न राज्यं न च राजासीन्न दण्ड्यो न च दाण्डिकः ।
स्वधर्मेण प्रजास्तावत् रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

'उस समय न राज्य था और न राजा था, न दण्डनीय थे और न कोई दण्ड देनेवाला ही था। सब अपने कर्तव्यों-पर स्वयं आरूढ थे।' उस समय नैतिकताका मूल्य था। यही हमारे भूतके श्री गणेशका आधार था। इस राजहीन अवस्थाको ऐतरेय ब्राह्मण एवं अथर्ववेदमें 'वैराज्यं' कहा है। ऐतरेय ब्राह्मणमें अनेक प्रकारके राज्योंकी गणना की है। उनमें 'वैराज्य' भी एक है। 'राजविहीनं राज्यं वैराज्यं' अर्थात् राजासे रहित केवल प्रजा द्वारा चलाये जाने वाले राज्यको 'वैराज्य' कहते हैं। यह राजहीन अवस्था सबसे प्रथमावस्था है। उस समय इस राजारहित अवस्थामें भी सभ्यताकी दृष्टिसे हम अद्वितीय थे। प्रारम्भमें हम भारतीय देवता और ऋषि थे, जङ्गली और बन्दरकी सन्तान नहीं। अपनेको बन्दरसे विकसित मानना अभारतीय और विदेशीय दृष्टिकोण है।

संसार परिवर्तन शील है। उन्नति और अवनति इस परिवर्तनके चक्र हैं। यह प्रकृतिका नियम है। कहना चाहिए, कि इन दोनोंकी सत्ता अनिवार्य है। एकके अस्तित्व पर ही दूसरेका अस्तित्व निर्भर है। इस विषयमें राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्तने लिखा है—

उन्नति तथा अवनति प्रकृतिका
नियम एक अखण्ड है।
चढता प्रथम जो व्योममें
गिरता वही मार्तण्ड है ॥

इस प्रकृतिके नियमके अनुसार मनुष्यकी बुद्धिमें भी परिवर्तन हुए। इस कारण उसके अन्दर अपने परायेकी भावना उद्बुद्ध हुई। अपनोंसे अनुराग और परायेसे द्वेष तथा भय उत्पन्न हुआ। बस! भयकी निवृत्ति-भावना ही राज्य और राजाकी उत्पत्तिका कारण बनी, निर्बलोंको बलवानोंने तङ्ग करना प्रारम्भ कर दिया। बुद्धिमानोंने संगठित हो कर बलवानोंसे राहत पानेके उपायोंको सोचा। इस कार्यके लिए उन्होंने बलवान् युवकोंको संगठित किया और उनका एक नायक बना दिया। नायक ही सम्मानित होकर आगे चल कर राजाके रूपमें बदल गया। इसे विद्वानोंका समर्थन और अनुशासन प्राप्त हुआ। यहींसे राज्य और राजाका प्रादुर्भाव हुआ। क्योंकि बिना रक्षकके प्रजा बलवान भेडियोंसे डर कर भागने लगी थी। अतः प्रभुने और जनता-जनार्दनने मिलकर राज्यकी आधार शिला मानवता पर स्थापित की। अथर्ववेदमें विराजावस्थासे इस अवस्था तक जो प्रगति हुई, उसका वर्णन इस प्रकार है—

विराड् वा इदमग्र आसीत् ।
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ।
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति ।
सोदक्रामत्सा समितौ न्यक्रामत् ।
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति ।

अथर्व. ८।१०।१

"सर्व प्रथम विराट् अर्थात् राजहीन अवस्था थी। पर जब प्रजाकी सुरक्षा खतरेमें पड गई और प्रजाओंमें असुरक्षा और भयकी भावना भरने लग गई, तो प्रजाओंमें भय उत्पन्न हुआ कि अब हमारी रक्षा कौन करेगा? अतः उन्होंने संगठित होकर एक सभा बनाई। इस प्रकार विराजावस्था उत्क्रान्त होकर सभावस्थामें परिणत हुई। पर जब सभाके सभ्योंमें विकृति आगई, तो सभाके नियंत्रणके लिए समिति की स्थापना की गई। इस प्रकार सभावस्था उत्क्रान्त होकर

समितावस्थामें परिणत हो गई और इस समितिका अध्यक्ष राजा बना।" इसी स्थितिको संस्कृतके एक श्लोकमें इस प्रकार बताया है।

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः॥

'जनता-जनार्दनने सोचा कि अब भयसे जनताको बचाने के लिए राज्यकी स्थापना करनी ही पड़ेगी। इसलिए सबकी रक्षाके लिए प्रभुने राजाको बनाया।' उसने निर्बलोंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया। इस प्रकार इसने प्रजाके अनुरञ्जनका व्रत लिया।

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्॥

रघुवंश

'जैसे विश्वको प्रह्लादन करके चन्द्रमा अपना नाम सार्थक करता है और जिस प्रकार सूर्य अपनेसे संसारको ज्योतिर्मय करनेसे अपना नाम सार्थक करता है, उसी प्रकार राजा रघु भी प्रजाका अनुरञ्जन करके राजाके शब्दको सार्थक करते थे।'

भारतीय राजाका प्रजाऽनुरञ्जन व्रत ही राज्यका मूल आधार था। इसी व्रत पर आरूढ राजा आदर्श मानव-समाजकी स्थापना करता था। क्षत्रिय राजाका कर्तव्य ही यह था कि वह प्रजाकी हर कष्टोंसे रक्षा करे। महाकवि कालिदास क्षत्रियका लक्षण करते हुए रघुवंशमें कहते हैं—

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः॥

'क्षत्रका अर्थ है 'क्षतात् त्रायते' प्रजाको क्षत, जख्म या कष्टसे बचाना'।

एक एक दानेसे राशि बनती है, इसी प्रकार एक एक व्यक्तिसे समाज बनता है। समाज और व्यक्तिका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। स्वस्थ समाज व्यक्तिके विकासका परिशुद्ध-वातावरण निर्माण करता है। इस प्रकार राजाने व्यक्तिके कर्तव्योंको सामाजिक और वैयक्तिक रूपमें विभक्त किया। वैयक्तिक विकासके लिए उन्होंने आश्रमोंकी व्यवस्था की और सामाजिक विकाससे लिए वर्णोंका निर्माण किया। उस समय लोगोंने मनुष्यकी औसत आयु सौ वर्ष माना था। इस औसत-आयुको चार विभागोंमें विभाजित किया था। प्रत्येक आश्रममें मनुष्यको पचीस-पचीस वर्ष बिताना पड़ता था। उन्हें उन्होंने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के नामोंसे प्रसिद्ध किया। इन आश्रमोंमें रहता हुआ मनुष्य अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सम्पादन करता हुआ सामाजिक कर्तव्योंका परिवहन करता था। इसी भावकी पुष्टिमें महाकवि कालिदास कहते हैं—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

'रघुवंशी लोग पच्चीस वर्षकी आयुतक विद्या पढ़ते थे। युवावस्थासे सम्पन्न होकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे और तीसरी पच्चीस वर्षकी आयुमें मुनिवृत्तिको धारण करते थे और चौथे पच्चीस वर्षोंकी आयुमें योगके द्वारा अपने शरीरका त्याग करते थे।' इसी बातको एक नीति-कारने इस प्रकार कहा है—

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितः धर्मः चतुर्थे किं करिष्यति॥

'प्रथम पच्चीस वर्षोंमें यदि मनुष्य विद्या और व्रताचरण नहीं करता, दूसरे पचीस वर्षोंमें यदि धन नहीं कमाता, तीसरे पचीस वर्षोंमें यदि धर्म नहीं कमाता, तो चौथे पचीस वर्षोंमें वह क्या करेगा।' यही व्यक्तिगत जीवनका पुरोगम था। इस पुरोगमके द्वारा मनुष्य धर्मकी मर्यादामें रहता हुआ अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति करता था। मानव जीवनका ध्येय अभ्युदय और निःश्रेयसको प्राप्त करना ही था। ब्रह्मचर्य-जीवन मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक शक्तियोंके सञ्चयनके लिये ही होता था। गृहस्थ-जीवन द्वारा मानव मातृ-पितृ-ऋणोंसे मुक्त होता था और वंश-धर्मकी परम्पराको अग्रसर करनेके लिए सन्तान उत्पन्न करता था। वानप्रस्थ जीवनमें तप और अध्यापन किया जाता था। अन्तमें संन्यास जीवन संसारकी भलाईके लिए होता था। भारतीय संस्कृतिमें मानव-जीवनका पचहत्तर वर्ष त्यागमें बीतता था। गृहस्थ जीवन ही संयमित रूपसे भोग विकासके लिए अवसर प्राप्त करता था। परन्तु आजका मनुष्य पन्द्रह वर्षकी आयुसे ही भोगमें लिप्त होकर अपना सारा जीवन इसीमें खपा देता है।

पर प्राचीनकालमें मनुष्य इस आश्रमोंके पुरोगमको निभाना अपना कर्तव्य समझता था। जो इस पुरोगमका अनुसरण नहीं करता था, उसे समाजमें मर्यादा नहीं प्राप्त होती थी। वह सामाजिक प्रतिष्ठाका भाजन नहीं होता था। इस आश्रम-मर्यादामें रहता हुआ व्यक्ति सामाजिक कर्तव्योंके निभाने और आचरणकी योग्यता प्राप्त करता था।

[क्रमशः]

‘ मा गृधः ’ ‘ लोभः पापस्य कारणम् ’

[लेखक— श्री पं. भास्करानन्द शास्त्री, सिद्धान्तवाचस्पति, प्रभाकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात)]

बहुत समय पूर्वकी बात है। विक्रमके वंशमें एक सिन्धुल नामके महाराजा हुवे, उज्जैन इनके राज्यकी राजधानी थी। यह बडे धर्म और न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। सारी प्रजा इनके राज्यमें सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती थी। इनके प्रधान मन्त्रीका नाम बुद्धिसागर था। महाराजाको राज्य करते हुवे अनेक वर्ष हो गये, अब बुढापा भी आ गया कोई सन्तान न होनेसे कुछ उदाससे रहने लगे। अपना बहुत समय ईश्वरोपासना, पूजा, पाठ, यज्ञ, याग और स्वाध्यायमें लगाने लगे। कारुणिक उस परमपिता परमात्माकी महती कृपासे वृद्धावस्थामें इनके महलमें एक पुत्ररत्नका जन्म हुआ। सारे राज्यमें प्रसन्नताकी लहर दौड गई, बधाइयाँ बटने लगीं, उत्सव-मंगलाचार होने लगे। महाराजा, महारानी एवं सारी प्रजाएँ बहुत ही प्रसन्न हुईं। महाराजाने अपने कुल पुरोहितको सन्मानपूर्वक बुलवाकर यज्ञयागादि कराके वेदोक्त रीतिसे उस बालकका नाम ‘ भोज ’ रखा।

बालक बडा ही रूपवान्, सबके मनको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला एवं दैवी श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त था। उसके प्रसन्न वदनको देखते ही सबका हृदयकमल खिल उठता था। वह दिन प्रतिदिन चन्द्रमाकी कलाकी भाँति वृद्धिको प्राप्त होने लगा। महाराजाने अपने उस प्यारे बालकको उत्तमसे उत्तम, श्रेष्ठतम संस्कारोंसे अलंकृत, सुशोभित करनेके लिये, महान्से महान् विद्वानों द्वारा शिक्षा, दीक्षाका सुन्दर प्रबन्ध किया।

भोज अभी पाँच ही वर्षके हो पाये थे कि महाराजा सिन्धुल सख्त बीमार पड गये, अब इनको अपने बचनेकी आशा नहीं रही। अपने प्रधानमन्त्री बुद्धिसागरको अपने पास बुलाकर विचार विनिमय कर अपने छोटे भाई मुञ्जको राजगद्दी दे दी। और अपने ५ वर्षके छोटे बालक भोजको उन्हींके हाथोंमें सुपुर्द कर दिया। जिस समय यह अपने प्यारे पुत्र भोजको अपने छोटे भाई मुञ्जके हाथोंमें सुपुर्द करने लगे इनकी आंखोंमें आँसू डबडबा आये। मुञ्जने सबके सामने महाराजाकी आँखोंसे आँसू पोंछते हुये कहा ‘ भ्राताजी इस बालक भोजके सम्बन्धमें अब आप बिलकुल चिन्ता न करें इसके सम्पूर्ण पालन, पोषण और रक्षाकी जिम्मेदारी मैंने ले ली है, मेरे होते हुये बालक भोजको किसी भी प्रकारका कोई भी कष्ट नहीं हो पायेगा। ’ अपने छोटे भाई मुञ्जके इन शब्दोंसे महाराजाको आत्मशान्ति मिली, और सबके सामने देखते ही देखते अपने प्राण छोड दिये।

अब मुञ्ज महाराजा बने, बालक भोजके विकासका पूरा पूरा ध्यान रखने लगे, समय बीतता गया, बालक भी बढता गया, इसके अन्दरसे उत्तम, श्रेष्ठ गुणोंकी वृद्धि होती गई। महाराजा मुञ्जने अपना प्रधान मन्त्री वत्सराजको नियुक्त किया, राज्य करते हुये कई वर्ष व्यतीत हो गये; अब बालक भोज भी बारह वर्षका हो गया।

अभी यह भोज १२ वर्षका ही हो पाया था कि एक दिन एकायक महाराजा मुञ्जके हृदयमें बालकके प्रति बुरा भाव उत्पन्न हो गया कि अभी भोज छोटा है, १२ वर्षका नाबालिग है, अगर यह पूर्ण रूपसे पढ लिखकर २५ वर्षके उम्रका बालिग नौजवान हो जायेगा तो मेरे लिये बडी ही कठिनाई उपस्थित होगी, उस समय यह मुझे राजसिंहासनसे उतारकर स्वयं महाराजा बन जायेगा, तो मैं क्या कर सकूँगा ? राज्यकी जनता और सब लोग इसके साथ हो जायेंगे, क्योंकि वास्तविक रूपसे राज्यका अधिकारी यह भोज ही है। अतः इसे अभी ही समाप्त कर देनेका प्रबन्ध करना चाहिये।

महाराजा मुञ्ज अपने प्रधानमन्त्री वत्सराजको बुला कर एकान्त कमरेमें मन्त्रणा करने ले गये और मन्त्रीसे बोले—

' देखो मन्त्रीजी ! यह भोज अभी बालक है, नाबालिग है, लेकिन राज्यका वास्तविक उत्तराधिकारी यही है। जब यह बड़ा होकर बालिग हो जायगा, तो मुझे अवश्य राजगद्दीसे हटाकर स्वयं महाराजा बन जायेगा, इस समयमें मैं क्या कर सकूँगा। यह मेरे लिये एक असाध्य रोग सा बन गया है, इसके कारण अब मेरी नींद हराम हो गई है, दिनरात इसी बातकी चिन्तासे मरा जा रहा हूँ। अतः तुम स्वयं किसी बहानेसे कल प्रातः जंगल दिखानेके लिये भोजको ले जाओ, और घोर भयंकर जंगलमें पहुंचकर दो पहरके ठीक १२ बजे अपनी तेज तलवारसे इसके सरको धड़से अलग करके और इसकी दोनों आँखें और कलेजेको निकाल करके शामको ४ बजे मेरे सामने पेश करो, तभी मुझे शान्ति मिलेगी। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं इस रहस्यपूर्ण कार्यको ठीक प्रकारसे सम्पादन करो, अन्य किसीको पता लगे बगैर इसकी समाप्ति होजाय, यही एकमात्र अब मेरी इच्छा है। राजनीतिमें दया नहीं दिखाई जाती है, कठोर बनना ही पड़ता है।

महामन्त्री वत्सराज— महाराज ! ऐसा घोर अन्याय, पाप करनेका आदेश न दें। बालक भोज बड़ा होकर भी आपका आदर सत्कार हमेशा करता रहेगा। कभी भी आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने देगा। इस समय आप ही इस बालकके संरक्षक और माता-पिताके तुल्य हैं। आपके ज्येष्ठ भाई महाराजा सिन्धुल जब मरनेके समय आखोंसे आंसू बहाते हुये इस छोटेसे बालको आपके सुपुर्द कर गए थे, उस समय आपने सबके सामने अपने ज्येष्ठ भाईके आखोंसे आंसू पोंछते हुये बालक भोजके संरक्षणकी जिम्मेदारी ली थी, और आपने कहा था मैं भोजको कभी भी किसी भी समय कोई भी कष्ट नहीं होने दूँगा, लेकिन अब ऐसी बातें मेरी समझमें नहीं आरही हैं, आपको हो क्या गया है ? देखिये, जरा विचार कीजिये, यह कितना सुन्दर गुणवान्, दिव्यसंस्कारी बालक है, सारी प्रजा आपको क्या कहेगी ? ईश्वरके समक्ष जानेपर आप क्या उत्तर देंगे ? आप इस बालकका खून करने करानेकी बात न सोचें। मैं आपको बारम्बार यही कहता हूं, और प्रार्थना करता हूं कि यह बातें बिलकुल अपने मनसे निकाल दें। आगे जैसी आपकी इच्छा।

महाराजा मुञ्ज— मन्त्रीवर ! मैंने आपकी सब बातें ध्यानसे सुनी हैं, लेकिन अब मैं भोजके लिये बिलकुल दया नहीं दिखा सकता, यह मेरी आंखोंमें कांटेकी तरह चुभने लग गया है। जो मैंने आपको आज्ञा दी है उसका पालन होना चाहिये, व्यर्थ तर्कसे कुछ लाभ नहीं, नहीं तो कठोर राजदण्डसे आप भी नहीं बच पाओगे। यह राजतन्त्र है समयानुसार सब कुछ करना पड़ता है। जाओ कार्य सम्पादन करो। कल यह काम अवश्य होजाना चाहिये जिसका मैंने आपको आदेश दिया है।

महामन्त्री वत्सराज— जैसी महाराजकी आज्ञा, मैं वैसा ही करूँगा। (महाराजाको अभिवादन करके वहांसे चल देता है।)

महामन्त्री वत्सराज गुरुकुलमें आकर भोजको अपने साथ ले आया और कहा— प्यारे भोज ! तुमको मैं प्रातःकाल जंगलकी प्राकृतिक शोभा दिखाने ले चलूँगा। तुम्हारे चचा महाराजाजीकी आज्ञा है, तुम राजकुमार हो अतः तुमको सब प्रकारके ज्ञानविज्ञानसे अवगत कराना है। कल प्रातः ७ बजे बिलकुल तैयार होजाना, हम दोनों उस समय अपने अपने घोड़ेपर सवार होकर जंगलके लिये यहांसे चल पड़ेंगे। और शामको लौट आयेंगे।

बच्चों और विद्यार्थियोंको सैर सपाटेमें बड़ा ही आनन्द आता है। ये इस मौकेकी तलाशमें रहते हैं कि कभी ऐसा अवसर आये और हम मनोरञ्जन करनेके लिये बाहर जायें। बालक भोज बड़ा ही प्रसन्न हुआ, और कहा मन्त्रीजी- मैं कल प्रातः ७ बजेके पहले ही तैयार होजाऊँगा। बालक अपने निवास कक्षमें चला गया और मन्त्री अपने घरको।

(दूसरे दिन प्रातः ७ बजेका समय। महामन्त्री— वत्सराजका राजमहलके मुख्य द्वारपर अस्त्रशस्त्रसे सुसज्जित होकर घोड़ेपर चढ़े हुये आना और बालक भोजका मन्त्रीजीको आदरपूर्वक अभिवादन करना)

महामन्त्री— राजपुत्र ! तैयार हो गये हो ?

भोज— हाँ मन्त्रीजी, मैं बिलकुल तैयार हो गया हूँ। देखिये यह मेरा छोटासा घोड़ा जिसपर मैं बैठा हूँ कितना अच्छा, सुन्दर और चलनेमें तेज है। मैंने जंगलमें भोजन करनेका सामान भी इसपर इधर लटका लिया है।

महामन्त्री— बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है। अच्छा अब यहांसे जंगलकी ओर चलें।

(दोनों जंगलकी ओर चल देते हैं।)

महामन्त्री और बालक दोनों अपने अपने घोड़ोंको दौड़ाते, कभी आहिस्ते आहिस्ते चलाते, नचाते, घुमाते, फिराते, प्रेम और स्नेहपूर्वक आपसमें बातें करते मनोरञ्जनपूर्वक चले आ रहे थे। इस प्रकार करते कराते, चलते, चलाते जंगलमें बहुत दूर निकल गये और घोर, भयंकर घने जंगलमें दोनों पहुंच गये, जहाँ किसी आदमीका मिलना भी दुर्लभ था, जिसमें शेर, बघर, चीते, रीछ आदि हिंसक पशु निवास करते थे। उस भयंकर जंगलमें पहुंचकर सामने एक सुन्दर जलसे पूरित जलाशयको देखकर महामन्त्रीने कहा— राजपुत्र! यह कितना सुन्दर जलाशय है, चलते चलते थक भी गये हैं अब दस बजेका समय भी हो गया है, यहीं ठहरकर भोजन विश्रामादि करेंगे फिर वापिस लौटेंगे।

भोज— बहुत अच्छा मन्त्रीजी। यहीं ठहरें इस सुन्दर जलाशयको देखकर मेरी सारी थकान दूर हो गई। इस जलाशयका जल कितना निर्मल है, आसपासका दृश्य भी कितना मनोहर है।

(दोनों अपने घोड़ोंसे उतर जाते हैं, अपने अपने घोड़ोंको बड़ी बड़ी रस्सियों द्वारा वृक्षोंमें बाँध देते हैं, घोड़े इधर हरी हरी घासें खाकर अपनी भूख और थकान दूर करते हैं।)

मन्त्री और बालक भोज जलाशयके पवित्र जलको लेकर अपने मुँह, हाथ, पैर आदिको धोकर एक सुन्दर स्थानपर आकर बैठ जाते हैं। कुछ समयतक आपसमें प्रेमसे बातें करनेके पश्चात् मन्त्री कहते हैं— राजपुत्र! अब भोजन भी कर लेना चाहिये।

बालक भोज— आप ठीक ही कहते हैं अधिक चलनेसे भूख भी अच्छी लग गई है।

(दोनों अपने अपने भोजन सामानको लाकर खानेके लिये रखते हैं और अपने अपने भोजन कुछ वस्तुओंको आदान प्रदान करके प्रेमपूर्वक भोजन करते हैं।)

भोजन कर लेनेके पश्चात दोनों कुछ समय आराम करते हैं। जब ११½ बजेका समय होता है महामन्त्री वत्सराज अपनी लपलपाती चमचमाती तलवार खींचकर खड़े हो जाते हैं, और जोश भरे हुये शब्दोंमें कहते हैं बालक भोज! सावधान, अब तैयार हो जाओ, उठकर बैठ जाओ, महाराजा मुञ्जके तुम्हारे मृत्युके आदेशको सुन लो। बालक भोज सावधान होकर बैठ जाता है। महामन्त्री मृत्युके आदेशको सुनाते हैं और कहते हैं, राजपुत्र! मैं तुमको महाराजाके आदेशानुसार कत्ल करनेके लिये ही यहाँ एकान्त सुनसान भयकर जंगलमें ले आया हूँ, इस सब, बातोंमें १५ मिनटका समय समाप्त हो जाता है। भोज विस्मयमें पड़ जाता है। सोचता है, क्या करें!

महामन्त्री— भोज! अभी तुम्हारे कत्ल करनेमें आध घन्टेका समय शेष है, अगर ईश्वरकी प्रार्थना उपासना करनी है कर लो, किसीको कुछ लिखना है तो लिख दो, किसीको कोई संदेश देना है तो दे दो, अभी ११½ बजे हैं ठीक १२ बजे तुमको समाप्त करेंगे इस प्रकार महाराजाका आदेश है। तुम्हारे सरको धड़से अलग करनेके पश्चात् तुम्हारी यह चमकती दोनों आँखें और कलेजा निकाल करके ठीक ४ बजे महाराजाको पेश कर देना है। अतः अब जो भी कुछ करना हो कर लो। इतना कहकर मन्त्री चुप हो जाता है।

भोज— मन्त्रीवर! अच्छी बात है, अगर मेरे चचा महाराजा मुञ्जजीको मेरे कलेजे और दोनों आँखोंकी आवश्यकता है तो निकाल कर उन्हें दे दो, मुझको इसमें कुछ भी ऐतराज नहीं है, यह चीजें उनकी हैं, क्योंकि पूज्य पिताजीने मुझको उनके हवाले कर दिया है, वह जैसा भी चाहें कर सकते हैं।

धैर्यपूर्वक अपनी छोटीसी कटार अपनी बगलसे निकालता है, जंगलकी एक पतली लकड़ी लेकर उसी कटारसे कलम गढ़ लेता है, दरख्तके एक सूखे पत्तेको कागज बनाता है तथा अपनी उसी छोटीसी तेज कटारसे दांये जंघेको थोड़ा काटकर उससे निकले हुये खूनको अपने द्वारा ही पत्तेके बनाये दोनोंमें जमा करके स्याहीके रूपमें रख लेता है। और इस थोड़ेसे समयमें अपने खूनकी स्याहीसे सूखे पत्ते पर एक श्लोक लिखकर महामन्त्रीको दे देता है और कहता है— 'मन्त्रीवर! लीजिये यह मेरा पत्र और सन्देश मेरे प्यारे चचाजीको दे दीजियेगा और कहियेगा मेरा यही अन्तिम सन्देश है, मेरा आखिरी प्रणाम आपको स्वीकार हो, अब मैं आपके दर्शन पुनः स्वर्गमें करूँगा, सब बड़ोंको भी मेरा प्रणाम।'

बालक भोज इस प्रकारसे अपने चचाको अपना सन्देश देने और प्रणाम करनेके पश्चात् मन्त्रीसे कहता है मन्त्रीवर!

अब समय हो गया है मेरे सरको धडसे अलग कर दो और मेरी दोनों आखें और कलेजा निकालकर चचाजीको ठीक समय पर लाकर पेश कर दो।

बालक भोजके इस महान् धैर्य, बुद्धि, साहस, स्वभाव और महानताको देखकर तथा उसके इस थोडेसे समयमें तलवारकी छायामें, मौतके उपस्थित होने पर भी बनाये हुये, खूनसे लिखित श्लोकको पढकर महामन्त्रीका हृदय गद्‌गद् हो जाता है, आंखोंमें आँसू डबडबा आते हैं और प्रकटरूपमें कहता है- राजपुत्र ! तू धन्य है, तेरा हौसला, साहस, धैर्य और बुद्धिमत्ताको देखकर मेरा हृदय भर आया है। अब मैं अपनी जान देकर भी तुम्हारे प्राणकी रक्षा करूँगा। और (मन ही मन सोचता है) जब महाराजा मुञ्ज अपने भतीजेके खूनसे लिखित इस श्लोकको पढेंगे उस समय वह पागलसे हो जायेंगे अपने किये पर पछतायेंगे, आकुल और व्याकुल होकर अपने प्यारे भतीजेको मुझसे माँगेंगे और प्यारे भतीजेके न मिलने पर स्वयं आत्महत्या करनेके लिये विवश हो जायेंगे उस समय मैं क्या करूँगा ! (प्रकट रूपमें) राजपुत्र भोज ! तुम अपने घोडेको तैयार करो मैं भी अपने घोडेको तैयार करता हूँ, हम दोनों यहाँसे चलें। कुछ भी हो मैं अपनी जानपर खेलकर भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा करूँगा।

दोनों अपने अपने घोडेपर सवार होकर यहाँसे चल देते हैं। आगे मन्त्री और पीछे भोज दोनों बडे वेगसे घोडोंको दौडाये हुये चले जा रहे हैं थोडी देरमें ही एक और दूसरे जंगलमें पहुँच जाते हैं। वहाँ एक ऐसा व्यक्ति रहता था जो महामन्त्री वत्सराजके गुप्तसे गुप्त कामको बडी ही दक्षतासे करनेमें निपुण था; उसके पास पहुँच कर और उसके हाथोंमें बालक भोजको सौंपकर और अपने सब गुप्त रहस्यों-को उसे बताकर और यह कहकर कि इस राजपुत्रका सुप्रबन्ध तुम्हें करना है, किसीको इसका पता भी नहीं लगने देना है, बहुत ही होशियारी और गुप्तरूपसे राजपुत्र-की रक्षा करना यह सम्पूर्ण जिम्मेदारी अब तुम्हारे ऊपर है। मैं अब शीघ्र ही यहाँसे जाता हूँ, क्यों कि मुझे दूसरा बहुत आवश्यक काम शीघ्र करना है। इस प्रकार सब प्रबन्ध करके मन्त्री वहाँसे चल दिया और एक हरिणको अपनी तीरसे मार कर उसकी दोनों आँखें और कलेजा निकाल कर अपने पास रख लिया।

(सायंकाल ४ बजेका समय)

महाराजा मुञ्ज राजसिंहासन पर विराजमान हैं, कुछ चिन्तानिमग्नसे दीख पडते हैं। (मन ही मन सोचते हैं) मैंने बहुत ही बडा पाप किया है, जो अपने निर्दोष भतीजे-को मरवा डालनेका आदेश दिया है। मन्त्री अब उसे मार भी चुका होगा। अब चार बजेका समय हो गया है वह उस निर्दोष बालकके दोनों आखें और कलेजा निकालकर लाने ही वाला है। मुझ जैसा पापी संसारमें कोई भी नहीं है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, हृदयमें जलनसी हो रही है, है, मन अत्यन्त व्याकुल हो गया है।

(इतनेमें महामन्त्री वत्सराजका राजदरबारमें प्रवेश।)

महामन्त्री— महाराजाकी जै हो।

एक सुवर्णकी थालमें, दो आखें और कलेजा इन तीनोंको रेशमी कपडेसे ढककर महाराजा मुञ्जके आगे पेश कर देता है।

महाराजा मुञ्ज— कहो मन्त्रीवर ! सब काम पूर्ण हो गया ?

महामन्त्री— जी हाँ, जैसा महाराजने आदेश दिया वैसा ही किया है।

महाराजा— अच्छा बताओ मरनेके पूर्व उस मेरे भतीजेने मेरे लिये कुछ सन्देश भी दिया है अथवा नहीं ?

महामन्त्री— महाराज ! जब मैं उस निर्दोष, सुन्दर सौम्य स्वभाववाले संस्कारी बालकका वध कर देनेके लिये अपनी तलवार उठाई और उसको आपका दिया हुआ आदेश पढकर सुनाया, उस समय ११½ बजेका समय था, अभी उसे समाप्त कर देनेमें आध घन्टेकी देरी थी। आपके कहनेके मुताबिक उसको आध घन्टेका समय और दिया और फिर कहा, 'हे भोज ! इस आध घन्टेमें अगर ईश्वरका ध्यान करना चाहते हो तो कर लो, किसीको कोई संदेश देना है सो दे दो, कोई पत्र लिखना है तो लिख लो, ठीक बारह बजे इस तलवारसे तुम्हारी गर्दन काटकर सरको धडसे अलग करके तुम्हारी दोनों आँखें और कलेजा निकालकर महाराजाको पेश कर देना है। जब मैंने उस सौम्य बालकसे ऐसा कहा तो उसने बिना ही उद्विग्न मनसे बडे ही धैर्यपूर्वक शान्त हृदयसे अपनी कटारसे अपने दायें जंघेको काटकर एक पत्तेके बनाये दोनेमें खून इकट्ठा कर लिया, एक लकडीको गढकर कलम बना ली और जंगलके एक सूखे पत्तेको उठाकर

उसका कागज बनाया उस पर अपने खूनकी स्याहीसे यह श्लोक लिखकर सन्देशके रूपमें आपको दिया है और कहा है मेरे कलेजे और दोनों आखें निकालकर मेरे चचा महाराजाको दे देना, पता नहीं इन चीजोंसे उनका कितना बडा प्रयोजन सिद्ध होगा। महाराजा महामन्त्रीके हाथसे उस पत्रको लेकर ध्यानसे पढते हैं, पढते ही मूर्छित होकर गिर पडते हैं। मन्त्री घबडाकर महाराजाके मुखपर ठण्डे पानीका छींटा मारता है। महाराजा पुनः होशमें आते हैं और उस श्लोकको पुनः पढते हैं—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कार भूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो ह्यस्तङ्गता भूपते
नैकेनापि समङ्गता वसुमतिः मुञ्ज त्वया यास्यति ॥

सतयुगमें श्रेष्ठ अलङ्कारोंसे अलंकृत मान्धाता नामके अत्यन्त धार्मिक महाराजा इस पृथ्वीके सम्राट् बने, लेकिन यह पृथ्वी उनकी न हुई, वे इसको छोडकर चले गये। त्रेतायुगमें महासमुद्र पर भी पुल बाँधकर राक्षसराज रावणका वध करनेवाले महायशस्वी सम्राट् रामचन्द्र इस पृथ्वीके महाराजा बने, लेकिन वह भी मृत्युके ग्रास बन गये, लेकिन यह पृथ्वी उनकी भी न हुई। द्वापरमें महाराजा धर्मराज युधिष्ठिर आदि अनेक इस पृथ्वीके स्वामी, सम्राट्, महाराजा हुये, वे सब धर्मात्मा थे, न्यायसे पृथ्वीका उपभोग किया, लेकिन यह पृथ्वी उनमेंसे किसी एककी भी न हो सकी। हे मेरे चचा मुञ्ज ! अगर आप मुझ निर्दोष अपने भतीजेको मरवा करके इस पृथ्वीके राज्यको भोगना चाहते हो तो भोग लो, लेकिन याद रखो यह पृथ्वी आपकी भी नहीं होगी, आपकी अपकीर्ति शेष रह जायेगी, यह निश्चय है।

महाराजाने अपनी कटार निकाल ली और अपने पेटमें भोंकनेके लिये उद्यत हो गया। जैसे ही हाथको ऊपर उठाया कि कटारको पेटमें भोंक कर अपनेको समाप्त कर लें, इतने ही में मन्त्रीने उनके हाथको जोरसे पकड लिया और कहा—"महाराज ! यह करनेसे अब क्या लाभ ? जो होना था वह हो गया। उस समय मैंने आपको बहुत समझाया लेकिन आप नहीं माने, अब तो एक ही मार्ग है कि सब पिछली बातें भूलकर राज्यका संचालन करो।

महाराजा— (विह्वल होकर) मन्त्रीवर ! आपने मुझे उस समय बहुत समझाया था यह ठीक है, उस समय राज्यके लोभमें पडकर मैं अन्धा सा हो गया था। धर्म, अधर्म, न्याय, अन्याय किसीका भी भान उस समय मुझे नहीं था; अब मेरी आँखोंके सामनेसे लोभका पर्दा हट गया है, इस समय मैं अपनी इस कटारसे अपने पेटको फाडकर इस भतीजेके हत्या करानेके महापापका प्रायश्चित्त करूँगा। मुझ ऐसे महापापीको संसारमें जीवित रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। या तो उस मेरे प्यारे भतीजेको कहींसे भी लाकर मेरे सामने उपस्थित करो नहीं तो मरता हूँ। कटारको पुनः उठाता है।

प्रधानमन्त्री— (महाराजके उठाये हुये हाथको पुनः पकड कर) महाराज ! वृथा शोक न करें। इस प्रकार करनेसे हानि ही हानि होगी, लाभ कुछ भी नहीं होनेका।

(महामन्त्री मन ही मन विचार करके)

'मैंने महाराजकी हर प्रकारसे परीक्षा लेली है, यह अब अपने भतीजे भोजके लिये वास्तवमें विह्वल हैं, नहीं तो स्वयं आत्महत्या कर लेंगे।'

(प्रकट रूपमें)

महाराज ! आप शोक न करें। मैं उस समय जान गया था कि जिस समय महाराजा अपने भतीजेके खूनसे लिखे

हुये पत्रको पढेंगे, उस समय इस अवस्थाको प्राप्त होंगे, महाराजा बारम्बार अपने निर्दोष प्यारे भतीजेको मुझसे माँगेंगे, उस समयमें मैं क्या कहूँगा ? अतः मैंने भविष्यको होनेवाली बातको सोचकर आपके प्यारे भतीजेको एक सुरक्षित स्थानपर छोडकर और उसके सुखकी सम्पूर्ण व्यवस्था करके, पश्चात् एक जंगली हरिणको मार करके उसकी ही दोनों आँखें और कलेजेको इस सुवर्णकी थालीमें रेशमी सुन्दर कपडेसे ढककर आपके सामने पेश किये हैं, अतः आप अब दुःखी न हों।

महाराज— (आश्चर्यमें पडकर) मन्त्रीवर ! आप बडे ही दूरदर्शी, बुद्धिमान्, श्रेष्ठ मन्त्री हैं। मुझे इस बातकी स्वप्नमें भी सम्भावना न थी कि आप इस प्रकार करेंगे। आपने बहुत ही अच्छा किया। अच्छा, जल्दी जाकर अतिशीघ्र मेरे प्यारे भतीजे भोजको मेरे पास ले आओ।

महामन्त्री— महाराज ! जैसी आपकी आज्ञा। महामन्त्री वत्सराज अपने घोडेपर सवार होकर फिर उसी जंगलमें जाते हैं और राजपुत्र भोजको साथमें ले आकर महाराजा मुञ्ज समक्ष उपस्थित होते हैं। महाराजा मुञ्ज प्रेमसे पुलकित होकर राजकुमार भोजको अपने दोनों हाथोंसे पकडकर हृदयसे लिपटा देते हैं और सबके सामने राजकुमार भोजको सिंहासन पर बैठाकर और राज्य तिलक करवाके 'मा गृधः' 'लोभः पापस्य कारणम्' इन दोनों सूक्तोंका उच्चारण करते हुये जंगलमें तप करने चले जाते हैं।

नूतन वर्षकी मंगल कामना

[लेखक— ब्र. श्री सुदर्शन विद्यावाचस्पति, भरूच (गुजरात)]

★

आज कल जन संख्याकी बढती भारतका ही नहीं बल्कि दुनियाके तत्त्वचिन्तकों, वैज्ञानिकों और सभी जगन्नाथ-कोंका महान् युग-प्रश्न हो गया है। विविध समस्याएं इस प्रश्नके साथ खडी हुई हैं और हो रही हैं।

दूरंदेशी महर्षि दयानंदने अपनी अगाढ योगविद्याके बलसे इस भावी चित्रको देख लिया था, जिसकी वजहसे आजसे कई वर्ष पूर्व सं. १९३२ से इस दिशामें उन्होंने इशारा कर दिया था कि, अब पाषाणके जड देवोंको प्राण विहीन प्रतिमाओंकी पूजा अर्चनासे कुछ भी फलीभूत न होगा। अवश्य इतनी त्वरासे ऐसे धर्मको गंगाके जलमें बहाके मानवताको मंदिरोंमें प्रस्थापित करना होगा। प्राणी और प्राणवानोंकी प्रतिष्ठा-सेवा करना सीख लेना और मृतकोंके यथेष्ट सद्गुणोंका ग्रहण करना होगा।

इस कटु-सत्य सुनके लोग उनके ऊपर थूँके, कंकर फेंके, पत्थर फेंके, धूल और रेत उडाके धूलधूमित किये, अप-शब्दों और अश्लीलताकी वर्षा की, लाठी तलवार चलाई, जहरीला सांप फेंका, जलमें फेंका और आखिर जहर देनेमें भी न हिचकिचाये! फिर भी निर्भयतासे आजन्म यही सुखद सुर उनके जीवनसे सुनाई देता रहा कि जड दगड-बाबाको दफना-देकर जिन्दोंका सेवा-सम्मान करना सीखो। निर्भय और नम्रतासे यही बात वारंवार उन्होंने अपने लेख प्रवचनोंमें कही।

जनसंख्या जगत्में जब बढ रही हो और असंख्य चेतन और प्राणवान् प्रतिमाएं पृथ्वीपटको ठसाठस भर रही हों, तब मृतकोंकी मूर्तियोंका सर्जन कर करके कीमती महलों और मकानोंको उनके लिये रोके रखना क्या कोई बुद्धिमानोंका काम है। ऐसी अचेतनोंकी सेवामें लगे रहनेसे और चेतनोंकी उपेक्षासे मानवताकी अवनति ही होगी कि दूसरा कुछ? क्योंकि कुत्तोंके बच्चे जैसी जमात पैदा होती ही रहती है।

प्रथम पुत्र बडा होके गृहसंसारमें प्रवेश पा लेवें तो भी पिछली जमातकी झंझटका सवाल बना रहे, यह स्थिति वास्तविक नहीं है। प्रथम पुत्र भी पिताकी तरह लंबी जमात की जिम्मेदारी लेके पिताको मुक्त करनेमें असमर्थ ही पाया जाता है। क्योंकि उसका अपना भी तो संसार बढने लगता ही है। इसी तरह पिता ज्यादासे ज्यादा पकडमें आता ही रहता है। यों पिछली जमातको ठिकाने लगानेमें ही अपनी जिन्दगी समाप्त होती है और सीधा स्मशानमें पहुंच जाता है।

आखिर जो कार्य करनेको संसारमें आया था, वह प्रभुका उपकारी कर्म अपूर्ण अविकसित दशामें ही छोडके स्वधाम सिधार जाना पडता है। यों मनुष्य बच्चोंको पैदा करके उनका पालन-पोषणके सिवाय ज्यादा कुछ भी नहीं कर सकता। परिणाम स्वरूप प्रजा अच्छे संस्कारोंसे वंचित रहती है और रह रही है। उनका नैतिक स्तर नीचा आ रहा है। सच्चा उपदेश उनको मिलना दुर्लभ होता जा रहा है। आजकल तो मृतकोंकी मूर्तियां देखना दर्शन (?) करना कहा जाता है और उसमें ही धर्मकी इतिश्री हो रही है। अध्ययन, मनन और योग छूटता जा रहा है। केवल मूर्तिमें मनरंजन करना प्रजाके पल्ले पडा हुआ है फिर धर्मका प्रभाव युवको और आधुनिक नयी प्रजामें कैसे जमेगा?

अब नई प्रजाका नैतिक स्तर उठाके उनके मनको ऊपर उठाके अरविन्दकी परिभाषामें अतिमानसमें (अतिमानस-में) लेजाना हो तो बहु संततिके अनिष्टसे जनताको सचेत करके ऋषिप्रणाली युक्त संयमकी परंपराको अपनाना होगा। पाश्चात्य ढंगसे संतति नियमन करवाके भ्रष्टाचारमें धकेल देनेवाली सरकारी रीति-नीतिको भी साथ साथ ललकार-ना ही होगा।

ऐसा होगा तभी अरविन्दकी 'फिलॉसोफी' (तत्त्व-ज्ञान) हजम होगा। तभी दयानंदका दीपावली दिन शहीद होके, दिया हुआ वेदोंका-'वैदिक-धर्म' संसारमें

प्रसारित हो सकेगा। तब और तभी गांधी-विनोबाकी रामराज्य और सर्वोदयकी विजयवाणी विश्वमें विकसित होगी। गांधी-शिष्य विनोबा भी महर्षिकी इस टंकोरकी गहनताके अनुभव कर रहे हैं; जिसके परिणाम स्वरूप भी वे कई बार अपने प्रवचनमें जनताको चेतावनी देते हुए ललकारते देखनेमें आते हैं कि—

'ऐ दुनियाके विवेकी मानवो! तुम लोग अब युगानुकूल बनो और मूर्तिकी जगह पर मूर्त याने जिन्दोंकी सेवा करना सीखो।'

इस वास्तविक मूल्यांकनकी स्थापनाके लिये ही तो महर्षिने चारों ओरसे विरोध होते हुए भी कटु सत्य कष्ट सहन करके भी कहा। परन्तु उन्होंने जो कष्ट सहन किये उनका शतांश या दशांश भी सहनेकी शक्ति आजके समाज-सुधारकों, सेवकों और विद्वानोंमें आजावे तो अवश्यमेव थोडासा भी कटु सत्य कहनेकी हिम्मत कर सकें, कुछ न कुछ स्पष्ट वक्तव्य दे सकें। जबतक मनुष्य संसारके हाथोंमें कठपुतली है, तबतक संसारकी इच्छाके अनुसार ही उसको चलना पडता है। सुधारका सूर कभी निकाले तो भी डरते डरते बहुत सावधानीसे ही हो सकता है। यहि परिस्थिति हरेक क्षेत्रमें वरती जा रही है।

मतलब कि मनुष्य जो कुछ स्वतंत्र होवे तभी स्वतंत्र विचार करके जगत्के सामने प्रस्तुत कर सकता है। इस लिये संसारके शिकंजेमें (पकडमें) मानव जितना कम आवे उतना ही अच्छा है। जो कि जबतक देह है तबतक संसारकी पकडमें है ही। फिर भी वह जितने अंशमें स्वतंत्र रह सके उतना अधिक अपना मुँह खोल सकता है। इसीलिये तो संसारके विरक्त पुरुषोंको मानवताके जगद्-उपकारके कर्मोंमें लगानेके उद्देश्यसे अपने पूर्वज ऋषियोंने संन्यास धर्मका आयोजन किया है।

परन्तु यह एक अत्यन्त दुःखदायी हकीकत आज भारतके ही लिये नहीं अपितु दुनियाभरके लिये है कि, वैसे साधु और संन्यासी आज संसारमें पैदा ही कम होते हैं। वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम आज करीब लुप्त प्रायः हो गये हैं। आजका मानव स्मशानमें जाके जलता है, वहाँतक प्रायः गृहस्थाश्रमका ही पालन करता है। वैसे तो गृहस्थधर्मका श्रीगणेश उसके नियत समय २५ वर्षके पूर्व १८-२० वर्षकी उमरसे ही हो जाता है। फिर भी ५१ इक्यावन वर्षकी उमरमें भी उसमेंसे मुक्त नहीं हो पाता। बहुसंतति और कृत्रिम संततिनियमन आज उन्नतिके मार्गमें महान् आफतका हिमालय खडा कर रहे हैं। उसके तोड-फोडको अब तो चकनाचूर करना ही होगा। दिनांक १८-२-६१ को सुपा गुरुकुलके (गुजरातके) उत्सवमें प्रवचन करते हुए पूज्य ब्र. स्वामी श्री ब्रह्मानंदजीने अपनी ओजस्वी वीर वाणीमें सबकी विस्मयताके बीचमें आर्य वीरोंको और कुमारोंका ललकारके कहा कि 'शादी-लग्नको अब तो एक आपद् धर्म बना देना होगा।'

उनकी इस ओजस्वी वाणीने लेखकके दिलमें भी खलबली मचा दी और इस ऋषिमार्गमें चल पडनेकी पवित्र प्रेरणा दी। उनकी इस मान्यतामें अतिशयोक्तिका दर्शन करें तो भी कमसे कम इतना तथ्य और सत्य तो अवश्य है कि अब संतति उत्पादनमें विवेक और विचारसे काम लेनेका समय आ गया है। भारतकी जनसंख्या आज करीब ४४-४५ करोड पर पहुंच रही है। प्रत्यक्षम् किं प्रमाणम्? फिर भी पाठक वृन्द! बहुसंततिका बचावके लिये यदि आप शास्त्रोंको छान-बीन करके कुछ अनुसंधान करना चाहेंगे तो, वेद भगवान् भी इस परिस्थितिका बचाव नहीं करेगा? यदि आप 'वैदिक धर्म' की आज्ञा सुनना चाहते हैं तो ऋग्वेद १।१६४।३२ मंत्रका प्रमाण यहां उपस्थित करते हैं कि—

बहुप्रजा निर्ऋतिं आविवेश।

मंत्रका यह चरण स्पष्ट घोष करके कह रहा है कि 'बहुसंततिवाले दुःखोंको आमंत्रित करते हैं।' आजकी प्रत्यक्ष परिस्थिति और भगवान् वेदकी आज्ञाका विचार-मनन करके अनेक दुःखोंके मूलरूप बहुसंतति और कृत्रिम संतति नियमनको तिलांजली देकर 'वैदिक धर्म' अनुसार ऋषियोंका बताया हुआ ब्रह्मचर्य और संयमका मार्ग अपनाओगे तो उसमें व्यक्ति, समाज और संसार सबका सुख निहित है। तो परिस्थितिकी गंभीरता जानकर सभी संयमका मार्ग अपनावें, यही नये वर्षमें मनोमन मंगल कामना है।

अग्ने नय सुपथा राये।
धियो यो नः प्रचोदयात्।
सबको सन्मति दें भगवान्।

मानव-निर्माणकी वैदिक-योजना !

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी)

आजका युग योजना- प्रधान युग कहा जा सकता है। इसमें अतिशयोक्ति कुछ भी तो नहीं है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र क्या, प्रत्येक व्यक्तितक अपनी भौतिक योजनाओंके क्रियान्वयकी ओर अपने कदम बढा रहा है। दस वर्षीय, पंचवर्षीय योजनाएं बन रही हैं। नित नवीन योजना जनता जनार्दनके सामने प्रस्तुत की जा रही है।

आज हर जगह एक ही नारा लगता रहता है कि आजका आदमी भूखा है, उसे रोटी चाहिए, कपडा चाहिए और इसीकी पूर्तिके लिए ये सारे कार्यक्रम क्रियान्वित किये जा रहे हैं; पर यहां एक ही प्रश्न सामने आता है कि क्या केवल भूख मिटाना ही मानव जीवनका उद्देश्य है? यदि केवल यही मानव जीवनका उद्देश्य हो, तो ये सारे कार्यक्रम श्रेष्ठ हैं। परंतु यदि हम अपने दिमाग पर जरा जोर देकर सोचें तो हम यही पाएंगे कि उसका जीवनोद्देश्य कुछ और भी है। मानवके इस सुन्दर शरीरके पीछे एक सुन्दरतम तत्व और भी छिपा हुआ है, जिसे हम सब 'आत्मा' नामसे संबोधित करते हैं। हमारे सामने प्रकृति देवीका विशाल साम्राज्य बिखरा हुआ है, क्या यही सब कुछ है? नहीं! उसके पीछे भी एक महानतम तत्व नियामक है जिसे 'परमात्मा' के नामसे हम सभी पहचानते हैं।

यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो आज जो भी प्रगति हो रही है, वह एकांगी है, उसका दृष्टिबिन्दु शरीर और प्रकृतिसे आगे जाता ही नहीं है। भौतिकताका निरन्तर विकास ही आजका जीवनोद्देश्य बनता जा रहा है। एक समय था, हमारा राष्ट्र 'जगद्गुरु' राष्ट्र था और वह सारे संसारको 'चरित्र' की शिक्षा देता था। सारे विश्वकी आंखें उस समय भारतकी ओर ही लगी रहती थीं। कारण था, भारतके ऋषिपुत्रोंका चारित्रिकस्तर अत्यन्त उच्च था। ऐसी चारित्रिकउच्चतासे प्रसन्न होकर ही तो महर्षि मनुने उद्घोष किया था- 'पृथ्वीके समस्त मनुष्य भारतके ऋषियोंसे 'चरित्र' की शिक्षा प्राप्त करें।' ×

पर युगोंकी आंधियोंमें हमारे स्वर्णिम अतीतका वह सुनहरा पृष्ठ उड गया। झंझाओं और कुण्ठाओंके तूफानने हमें आज जहां ला खडा किया है, वहां है केवल दानवताका अट्टहास, जो पलपलमें मानव और मानवताको रह रह कर चुनौती दे रहा है। ... और त्रस्त मानवता तूफानसे घिरी नावकी भांति ही इधर उधरके थपेडे खाती हुई भटक रही है। उसने अपनी सारी मानवीय गुणोंकी अमूल्य सम्पत्ति खो दी है। फलस्वरूप पग पग पर कामुकता, अश्लीलता और नास्तिकताके नग्न नृत्य हो रहे हैं। मानव-चरित्र पग पग पर कुचला जा रहा है। जीवनमें कलह, अभाव और परेशानियोंने डेरे डाल दिये हैं, फिर भी मानव अपने आपको पहलेसे अधिक सुखी अनुभव कर रहा है।

इधर सार्वजनिक क्षेत्रमें भी यही स्थिति है। देशकी गिरती हुई नैतिक स्तरताकी आज हमें अनुभव होते ही लज्जा सी आती है। विश्वके बडे बडे विचारक, नेता, विद्वान्, संत और राजनीतिज्ञ घोषणा कर चुके हैं, कि इस समय विश्वको सबसे बडा खतरा है, तो वह मानवकी व्यक्तिगत नैतिकताके पतनका। सच्ची मनुष्यता, आदर्श व्यक्तिगत चरित्र आजकी सबसे बडी आवश्यकता है। देश विदेशको मिलानेवाली सडकें, विशालतम लोहपथ, विशाल बांध, बडे बडे कल कारखानों और अनेकानेक भव्य भवनोंका निर्माण अहर्निश होरहा है। राष्ट्रकी भौतिक उन्नतिकी योजनाएं नित नवीन रूपसे जनताके समक्ष आरही हैं, पर आजकी

× एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः। मनुस्मृति

सबसे बड़ी आवश्यकताकी पूर्ति हेतु कोई भी योजना हमारे समक्ष नहीं है। सच्चे मानव निर्माण राष्ट्रीय चरित्र निर्माण हेतु सच पूछा जाए तो आज किसी भी नेताको अवकाश कहां है ?

भौतिक उन्नति निरन्तर होरही है। किन्तु नैतिक पतन तो उससे भी तीव्रतम गतिसे बढता जाकर सुरसाके मुख की तरह बढकर हमारी मानवताको खा जानेकी तैयारीमें है। राष्ट्रसंघके भव्य भवन तो बन गए, बन रहे हैं और बनते रहेंगे, किन्तु उनमें बैठकर पुनः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जयनाद करनेवाला, विश्वप्रेमका सच्चा आदर्श बननेवाला, चरित्रवान् विश्वनागरिक आज दिखलाई ही नहीं पड रहा है। अतः हम अन्य सभी भौतिक उन्नतिकी योजनाएं भी चलाते रहें, पर नैतिक स्तरको ऊंचा उठाने, व्यक्ति चरित्र निर्माणकी ओर भी ध्यान दें। यह आजकी सर्वोपरि आवश्यकता है, जिसकी उपेक्षाके कारण ही हम आज दुःखी हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अन्य-कुछ भी बनें, चाहें वह कोई भी पद हो, पर इससे पूर्व हम मानवीय सद्गुणोंसे सम्पन्न 'मानव' अवश्यमेव ही बनें।

आज पाशविक प्रवृत्तियोंका सागर जनमनमें हिलोरें ले रहा है, राग-द्वेष, छल-कपट, दम्भ, पाखण्ड, मद, मत्सर, ईर्ष्या, अहंकारके पशु आज हमारे अंतःकरणोंमें छिपे हुए हैं। पग पग पर आज स्वार्थपरायणता बढती आ रही है। बेईमानी, धोखेबाजी और रिश्वतका बाजार आज गर्म है। पढे लिखे शिक्षितोंकी आज कमी नहीं है, परन्तु सही अर्थोंमें ईमानदारीके गुणोंसे सम्पन्न आज चपरासी भी ढूंढे नहीं मिलता, तो दृढतापूर्वक कह और चरितार्थ कर सके कि मैं पूर्णतः ईमानदार हूं। आप यहां यह पूछेंगे कि आखिर इस लम्बी चौडी भूमिकासे आपका तात्पर्य क्या है।

तो आइये सुनिए, वेद भगवान् कितनी पवित्रता भरा सन्देश सुना रहे हैं;- 'मनुष्य बनकर दिव्य जीवनका प्रवर्तन कर।' * आज हमें इसी सन्देशको जन मनमें सही स्वरूपमें उतारनेकी आवश्यकता है। हमारे मेधावी ऋषियोंकी योजनायें भौतिक नहीं थीं। वे भौतिक विकास के विरोधी भी नहीं रहे हैं, परन्तु आजकी तरह वे इसे जीवनका अंतिम लक्ष्य नहीं मानते थे। उनका लक्ष्य तो था आध्यात्मिकताके पथ पर अग्रसर होकर जन मनमें सच्ची मानवताका विकास करना और उनका प्रत्येक कदम इसी लक्ष्यकी ओर बढता था।

हमारे दूरदर्शी ऋषि महर्षियोंने मानव निर्माणकी योजना बनाई थी। सच्चे मानवका निर्माण किस तरहसे किया जा सकता है, इस विज्ञानको वे पूर्णरूपेण जानते थे। तभी तो महर्षि वशिष्ठने कैकेयीसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था- 'मैंने भरतका निर्माण किया है, मैंने उसे यथार्थतः समझता हूं, वह कदापि ऐसे नीच विचारोंका अनुसरण नहीं करेगा। उसके जीवनमें त्याग है, तपस्या है, कर्तव्योंके परिपालनकी दृढतम भावना है।' क्या आप और हम इतनी निश्चितता भरी बात अपने पुत्रके संबंधमें भी कह सकते हैं? आपका उत्तर 'नहीं' होगा। सच तो यह है कि हमारे ऋषियोंको अपनी उस निर्माण पद्धति पर पूर्णतः विश्वास था।

योगीराज कृष्ण किसी भी कठिन कामको करनेके लिए अक्सर प्रद्युम्नको कह दिया करते थे। एकबार अर्जुनने उनके समक्ष अपनी शंका उपस्थित करते हुए पूछ लिया- 'आपको यह कैसे विश्वास है कि आपका प्रद्युम्न इस कठिन कार्यको कर ही लेगा, इससे जरा भी विचलित नहीं होगा ?

कृष्ण मुस्कराकर बोले- 'अर्जुन! मैंने ऋषिप्रोक्त-पद्तिसे उसका निर्माण किया है, इसीलिए मुझे पूर्णतः विश्वास है कि वह प्रत्येक भयानक परिस्थितिमें भी विजय पानेकी योग्यता रखता है।'

मेधावी महर्षियों द्वारा आविष्कृत यह मानव निर्माणकी पद्धति क्या थी ? उसका स्वरूप क्या था ? किस प्रकार वे क्षुद्र जीवको महामानवके स्वरूपमें बदल दिया करते थे ? ये प्रश्न हमारे दिमागमें सहज ही आएंगे तो धन्यवाद ! वह प्रक्रिया 'संस्कार-पद्धति' थी। प्रत्येक मानवको वे संस्कारोंसे संस्कारित करते थे। संस्कारों द्वारा ही मानवके वास्तविक जीवनका निर्माण होता था।

संस्कार क्या है ?

संस्कार किसे कहते हैं, यह समझनेके लिए हमें संस्कार

---

* 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।'

शब्द पर गहनतासे विचार करना अनिवार्य होगा, एवं इसके शाब्दिक अर्थ पर भी ध्यान देना होगा।

संस्कार शब्दकी व्युत्पत्ति संस्कृतकी समर्थक 'कृञ्' धातुसे 'घञ्' प्रत्यय करके की गई है। जिसका स्वरूप इस प्रकार है, (सम्+ऽकृ+घञ् = संस्कार) इस शब्दकों प्रयोग भी भारतीय वाङ्मयोंमें अनेक अर्थोंमें किया गया है।

डा. राजबली पाण्डेयके अनुसार + 'संस्कार' शब्दका दूसरी भाषामें यथातथ्य अनुवाद करना असम्भव है। अंग्रेजीके 'सिरीमॅनी (Ceremony) और लैटिनके 'सरीमोनिया (Carimonia) शब्दोंमें संस्कार शब्द-का अर्थ व्यक्त करनेकी क्षमता नहीं है। इसकी अपेक्षा 'सिरीमॅनी' शब्दका प्रयोग संस्कृत 'कर्म' अथवा सामान्य रूपसे धार्मिक क्रियाओंके लिए अधिक उपयुक्त है। संस्का-रका अभिप्राय निरी बाह्य धार्मिक क्रियाओं, अनुशासित अनुष्ठान, व्यर्थ आडम्बर, कोरा कर्मकाण्ड, राज्य द्वारा निर्दिष्ट चलनों, औपचारिकताओं तथा अनुशासित व्यवहारसे नहीं है।

जैसा कि साधारणतः समझा जाता है और न उसका अभिप्राय उन विधि विधानों तथा कर्मकाण्डसे ही है, जिनसे इस विधिका स्वरूप, धार्मिक कृत्य अथवा अनुष्ठानके लिए आवश्यक अथवा सामान्य क्रिया अथवा किसी चर्चके विशिष्ट चलनोंके अर्थ लेते हैं। संस्कार शब्दका अधिक उपयुक्त पर्याय अंग्रेजीका सेक्रामेण्ट शब्द है, जिसका अर्थ है 'धार्मिक विधि विधान' अथवा कृत्य जो आन्तरिक तथा आत्मिक सौंदर्यका बाह्य तथा दृश्य प्रतीक माना जाता है, जिसका व्यवहार प्राच्य प्राक् सुधारकालीन पाश्चात्य तथा रोमन कैथॉलिक चर्च बपतिस्मा, सम्पुष्टि (कन्फर्मेशन), यूखारिस्ट, व्रत (पीनान्स), अभ्यञ्जन (एक्स्ट्रीम अंक्शन), आदेश तथा विवाहके सात कृत्योंके लिए करते थे। किसी वचन अथवा प्रतिमाकी पुष्टि, रहस्यपूर्ण महत्वकी वस्तु, पवित्र प्रभाव तथा प्रतीक भी 'सेक्रामेण्ट' शब्दका अर्थ है।'

भारतीय वाङ्मयमें भी 'संस्कार' शब्दके कई अर्थ मिलते हैं। मीमांसक १ यज्ञाङ्गभूत पुरोडाश आदिकी विधि-वत् शुद्धिसे संस्कारका आशय समझते हैं। इसी प्रकारसे अद्वैत वेदान्ती लोग २ जीवपर शारीरिक क्रियाओंके मिथ्या आरोपको संस्कार मानते हैं। नैयायिक भावोंको व्यक्त करनेकी आत्मव्यजंना परक शक्तिको संस्कार मानते हैं। जिनकी चौबीस गुणोंके अन्तर्गत परिगणना की जाती है।

संस्कृत वाङ्मयमें संस्कार शब्दका प्रयोग अनेक प्रकारके भावों और अर्थोंके निदर्शनमें किया गया है। शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण ३, सौजन्य, पूर्णता, व्याकरणसम्बन्धित शुद्धि ४, संस्करण-परिष्करण ५, शोभा, आभूषण ६, प्रभाव, स्वरूप, क्रिया, स्वभाव, छाप ७, स्मरणशक्ति तथा स्मरणशक्ति पर पडनेवाला प्रभाव ८, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि-विधान ९, अभिषेक, विचार, भावना, धारण कार्यका परिणाम १०, क्रियाकी विशेषता आदि अर्थोंमें संस्कार शब्दका प्रयोग हुआ है।

अब हम व्यावहारिक दृष्टिकोणसे इसपर विचार करें कि संस्कार हैं क्या? और हमारे ऊपर इनका प्रभाव किस प्रकार पड सकता है, और पडता था। कर्म मानव मात्रका भाव होता है। प्रत्येक प्राणी हर दर पल कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है, इसी तारतम्यमें वह सोचता,

---

+ हिन्दू संस्कार (चौखम्बा भवन वाराणसी) पृ. १७

१ प्रोक्षणादिजन्यसंस्कारो यज्ञाङ्ग-पुरोडाशेष्विति द्रव्यधर्मः। -वाचस्पत्य बृहद्विधान, ५ पृष्ठ ५१८८

२ स्नानाचमनादिजन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते। -वही

३ निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराज शब्दभाक् - रघुवंश ३।३५

४ संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च। कुमारसंभव १।२८

५ प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ। -रघुवंश ३।१८

६ स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते। -शाकुंतल ७।३३

७ यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्। -हितोपदेश १।८

८ संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। -तर्कसंग्रह

९ कार्यः शरीर-संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च। -म. स्मृ. २।२६

१० फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव। -रघुवंश १।२०

विचारता, भोक्ता और राय भी लेता ही रहता है और उन्हीं विचारोंके मन्थनको वह क्रिया रूप भी देता है। इस क्रियात्मकताका फल भी कार्यके करनेवालेको मिलता है, जो बाह्य और आंतरिक दो प्रकारसे गिना जा सकता है, इसे ही हम स्थूल और सूक्ष्म भी कह सकते हैं।

उदाहरणार्थ, किसीने किसी व्यक्ति विशेषको एक थप्पड मार दिया, उसका बाह्य फल तो यह हुआ कि उस व्यक्तिके चोट लगी, उसका गाल लाल हो गया, उसने क्रोधमें आकर चांटा मारनेवालेको गालियां दीं, यदि यह प्रहार प्रबलतम हुआ तो जिसके थप्पड लगा, उसने भी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रहार किया। इसी घटनाका आन्तरिक प्रभाव यह हुआ कि उसके हृदयमें द्वेष भावनाने जन्म ले लिया। क्रोधने अपनी जडें जमा लीं। जब कभी भी यह घटना उसको याद आवेगी वह संस्कार जागृत हो जाएगा और उसे क्रोध आएगा, द्वेषकी दबी अग्नि तुरन्त भभक उठेगी। फलस्वरूप उसके आन्तरिक शत्रु जागृत हो गए !

हमारे मेधावी महर्षिगण किसी भी घटनाके बाह्य परिणामोंसे चिन्तित नहीं थे, वे तो उसके सूक्ष्म एवं आन्तरिक परिणामोंसे घबराते थे, जो उनके भीतर संस्कारके स्वरूपमें बैठ गया है।

संस्कारको हमारे कर्मोंका ही सूक्ष्मतम स्वरूप कहें तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह है भी हमारे कर्मोंका सूक्ष्म रूप ही, बीज रूपसे वह चित्त पट्टी पर बना ही रहता है। गीतामें योगीराज श्री कृष्णने संस्कारोंके महत्वका सूक्ष्म निर्देश करते हुए एक सुन्दर बात कही है कि जो ज्ञानाग्निसे अपने संसारात्मक कर्मोंको जला दे वही पण्डित है। जबतक हम इन संस्कारात्मक गति विधियोंसे अपने आपको मुक्त नहीं कर लेते, तबतक मोक्ष या मुक्तिकी बात तो दूर रही, व्यावहारिक जीवनमें भी हम पूर्ण रूपेण सफलताका यजन नहीं कर पाएंगे ! हमारे कर्मके अनुरूप हमारी भावनाएं बनती हैं, जो सूक्ष्मतम रूपसे हमारे अन्तर् जगतमें छा जाती हैं, जिन्हें फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिकने मानसिक ग्रंथिको बन जाना कहा है। कर्म फलकी यही विवेचना यहां कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है ! जो चिन्तनीय हैं—

देखिए, हम भोजन करते हैं, उससे हमारी भूख जो लगी होती है, वह शांत हो जाती है। किन्तु वही भोजन रस बनकर मांस, मज्जा, वसा, अस्थि और वीर्य बनकर सूक्ष्म रूपमें हमारे शरीरके काम आता है। यदि एक वर्ष पश्चात् हम उस भोजनसे झगडा करनेका विचार करें तो वह वीर्य रूपमें जमा है, हमें उसीसे झगडना पडेगा, अथवा उसकी भोजन द्वारा प्रदत्त वात पित्त कफ आदि तत्वोंसे हमें निबटना पडेगा।

इसी क्रममें एक उदाहरण और भी देखिए, सौ नए पैसोंका एक रुपया बनता है। सौ रुपयोंका ढेर कितना बडा होता है, वजन भी काफी होता है, किन्तु उन्हीं सौ रुपयेका सूक्ष्मरूप सौ रुपयेका एक नोट होता है। यदि सौ रुपयेके कलदार इकट्ठे करें तो वजन अधिक होगा, यदि उन्हींको एक एक नये पैसेके सिक्कोंमें एकत्र करें, तो वजन और भी अधिक होगा। किन्तु उन्हीं सिक्कोंका सूक्ष्मरूप सौका नोट है, जिसमें कोई खास वजन नहीं रहता है।

यही व्यवस्था हमारे कर्मोंकी भी होती है। अनेकानेक कर्म जो हम नित्यप्रति जाने या अनजानेमें करते ही रहते हैं, संस्कार बनकर सूक्ष्मरूपमें बनकर पडे रहते हैं। किसी भी कर्मके संस्कारमें परिवर्तित हो जानेपर हमें उन अलग अलग कर्मोंसे नहीं, वरन् उन्हीं संस्कारोंसे टक्कर लेना पडती है, जो उस कर्मके करनेसे प्रतिक्रिया स्वरूप हमारे अन्तः जगत्में बन गए हैं और प्रतिपल बनते ही जा रहे हैं। यदि कोई चोरी करता है, चाहे वह एक धेलेकी हो, चाहे लाखोंकी सम्पत्तिकी, पर उसकी, जिसने चोरी की है, चित्त पट्टीपर चोरीका संस्कार अंकित हो ही जाएगा। फिर यही संस्कार प्रेरित करता जाकर धीरे धीरे प्रवृत्ति बन जाएगी और हम वैसा ही कार्य करते रह जाएंगे। एक ग्रामीण कहावत है 'पडी आदत मरेसे जाती है।' अर्थात् जो आदत पड जाती है वह मरनेपर ही समाप्त होगी। यह सब संस्कारोंकी ही तो बात है।

इस प्रकार यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो संस्कारोंका अभिप्राय: शुद्धिकी धार्मिक क्रियाओं और व्यक्तिके दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कारके लिए किये जानेवाले अनुष्ठानोंमेंसे संस्कार ही प्रधान हैं। इनके स्वरूप, विस्तार प्रयोजन आदिके बारेमें हम आलोचनात्मक प्रणालीसे आगे विचार करेंगे।

रोगसे रक्षा और हवनयज्ञ

[मूल लेखक—स्व. श्री डा० फुन्दनलालजी अग्निहोत्री एम्. डी., एम्. आर. ए. एस. (लंदन)
मेडिकल आफिसर टी. बी. सेनेटोरियम]

—अनुवादक- रवीन्द्र अग्निहोत्री, एम. ए.

★

पदार्थ विद्यासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं, उनका सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमाणु हर समय गतिशील रहता है, यद्यपि प्रत्यक्षमें ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता। दीवार, छत, मेज, कुर्सी, लेखिनी, मसिपात्र आदि यद्यपि आपको गतिशून्य दिखाई देती हैं पर इनका प्रत्येक परमाणु गतिमान् है। और यह गति भी ऊट-पटाँग नहीं, नियम-बद्ध होती है। प्रत्येक परमाणु एकसी गति नहीं रखता, किन्तु किन्हीं परमाणुओंकी गति समान होती है और किन्हींकी एक दूसरेके प्रतिकूल। प्रकृतिका यह नियम है कि दो समान वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको अपनी ओर खींचती हैं और विरुद्ध वस्तुएँ एक दूसरेको हटाती हैं। अतः जिन वस्तुओंके परमाणु एकसी गति करते हैं उनमें परस्पर आकर्षण होता है और विरुद्ध गतिवालोंमें अपकर्षण। आपने प्रायः देखा होगा कि एक कक्षामें कई विद्यार्थी पढ़ते हैं। उनमेंसे दोमें विशेष मित्रता हो जाती है जब कि दूसरोंमें वैसी नहीं हो पाती। एक सभामें एक ही उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कई मनुष्य सभासद् बनते हैं। उनमेंसे दोकी घनिष्ट मैत्री हो जाती है और शेषमें वैसी नहीं होती, यद्यपि संबंध एकसा ही रहता है। एक पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे पर प्राण निछावर करनेको उद्यत रहते हैं जब कि दूसरे इसी संबंधवाले एक दूसरेसे बात करनेमें भी घृणा करते हैं। यह सब कुछ भी इसी नियमके आधार पर होता है जिसको धार्मिक व्यक्ति पिछले संस्कार भी कहा करते हैं। इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें जन्म के अपरिचित पिता-पुत्र एक दूसरेसे मिले, तो दोनोंमें बिना जाने ही प्रेम उमड़ने लगा। इन सब बातोंमें नियम यही है कि एकसी गति रखनेवाले परमाणुवाले शरीरोंमें परस्पर मैत्री एवं आकर्षण होता है और विरुद्धवालोंमें अपकर्षण एवं घृणा।

यही हाल मनुष्य-शरीरके रोग विषयमें भी है। भिन्न-भिन्न मनुष्योंके शरीरके परमाणु भिन्न-भिन्न रीतिसे गति करते हैं। जिन वस्तुओंके परमाणु जिस मनुष्यके शरीरके परमाणुओंके समान गति करते हैं, उन वस्तुओंको वह शरीर अपनी ओर खींचता है और जो विपरीत होते हैं उनको दूर हटाता है। अतः वायु मंडलमें रोग-कृमि विद्यमान होनेपर भी केवल उस मनुष्यपर रोग-कृमि आक्रमण कर सकते हैं, जिसके शरीरके परमाणुओंकी उन कृमियोंके परमाणुओंके समानवाली गति होती है। या दूसरे शब्दोंमें, जिस मनुष्यसेंके भीतर रोगग्राहिणी शक्ति विद्यमान होती है। आपने देखा होगा कि तपेदिक, हैजा आदिके रोगीके पास चार मनुष्य असावधानीसे रहते हैं। उनमेंसे एकपर रोगका आक्रमण हो जाता है और तीन पर कुछ बुरा प्रभाव नहीं होता। इसका कारण स्पष्ट है कि जिस पर रोगका आक्रमण हुआ, उसके भीतर रोग-ग्राह्य शक्ति विद्यमान थी या उसके शरीरके परमाणुओंकी गति रोगके कृमियोंकी गतिके समान थी, जब कि शेष तीन मनुष्योंकी उनके विपरीत। अतः नियम यह निर्धारित हुआ, 'वायु मण्डलमें रोगके कृमि विद्यमान होते हुए भी केवल उस मनुष्य पर अपने आक्रमणमें सफल होंगे, जिसके भीतर रोगग्राह्य शक्ति विद्यमान है।'

इस शक्तिके उत्पन्न होनेके तीन बड़े कारण हैं—

१ पैतृक— जैसे किसी मनुष्यके माता-पिताको क्षय-

रोग, दमा, आतशक आदिका रोग हो, तो यह अनिवार्य तो नहीं कि अवश्य ही वह मनुष्य इन रोगोंका ग्रास बने, पर जरासी भी भूलसे वह इन रोगोंका रोगी हो सकता है; जब कि वही भूल किसी अन्य मनुष्य पर ऐसा प्रभाव न कर सकेगी अर्थात् इन रोगोंके कृमि इस मनुष्य पर अपने आक्रमणमें बडी सुगमतासे सफल होंगे।

२ विचार— हर समय यह विचारते रहना कि कहीं मुझे क्षय रोग तो नहीं हो गया। इस प्रतिदिनके विचारसे मानसिक शक्ति निर्बल होकर धीरे-धीरे रोगको निमंत्रण देने योग्य हो जावेगी अर्थात् यह विचार करते-करते उस शरीरके परमाणुओंकी गति उसी रोगके परमाणुओंकीसी होने लगेगी और रोग-कृमि मिलते ही वह उन्हें आकर्षित कर लेगा।

३ सृष्टि क्रमके प्रतिकूल अनियमिततासे रहकर अपने आपको निर्बल बना लेना। जैसे, अधिक रात्रि जागरण, सूर्योदय पश्चात् उठना, अधिक विषय भोगमें फँसा रहना, बहुत चिंताग्रस्त रहना, शक्तिसे अधिक पौष्टिक भोजन करना, बहुत उपवास करना, गंदी हवामें रहना, तम्बाकू, मदिरा आदिका विशेष सेवन, माँस, मछली आदि अप्राकृतिक वस्तुओंका सेवन करना आदि आदि। ये कारण प्रत्येक मनुष्यके बहुत कुछ अपने हाथमें हैं। चाहें तो वह प्राकृतिक नियमोंका पालन करके स्वास्थ्यका सुख उठाएं और चाहें उनकी अवहेलना कर इन्द्रियोंका दास बन डाक्टरोंका बिल चुकाएं।

स्वस्थ मनुष्य कौन है ?

जिस प्रकार हमारे शरीरके ऊपर खालका खोल चढा है उसी प्रकार शरीरके भीतरकी ओर मुलायम खालका अस्तर लगा है, जो गलेसे लेकर आँतोंके निचले भागतक विशेष रूपसे तर रहता है। जिस मनुष्यकी यह खाल व अस्तर दोनों बिलकुल ठीक हैं और उन पर कोई खराश नहीं है, वह स्वस्थ मनुष्य है और उसपर रोगके कृमि कोई बुरा प्रभाव नहीं कर सकते। इस वैज्ञानिक नियमको समझनेवाले बुद्धिमान् चिकित्सक सर्वदा तेज जुलाबका निषेध करते हैं, क्योंकि जुलाबकी तेज ओषधियाँ चाहें वह कैलोमेल या मैग्नेशिया साल्ट हो और चाहें वह क्रोट खिस या जमालगोटेकी बनी गोलियाँ हों, आँतके अस्तरमेंसे पानी चूस-चूस कर कोमल (मलाशय) में पहुँचाती हैं जिससे न केवल आँतें निर्बल हो जाती हैं, अपितु उसमें खराश होकर कृमिको प्रवेश करनेका अवसर मिल जाता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य वह है जो अपनी पाचनशक्तिका पूर्वसे विचार रखकर ऐसा अवसर ही न आने दे, कि जुलाबकी आवश्यकता पडे। खान पान, रहन-सहन प्राकृतिक रखने पर ऐसा होना कुछ असंभव नहीं है। फिर भी यदि अभाग्यवश कभी अवसर आ ही पडे, तो भी प्राकृतिक उपायोंसे ही कोष्ठबद्धता दूर करनेका यत्न करे। तेज जुलाब बिना अत्यंत आवश्यकताके कभी न लें, चाहे दो-चार दिन यह कष्ट भोगना ही पडे। अस्तु। यह तो बीचकी बात थी। रोगकृमियोंसे बचनेका पहला साधन तो यह हुआ कि हम स्वस्थ रहते हुए रोगग्राह्य-शक्ति अपने भीतर न उत्पन्न होने दें।

अब हम कृमिनाशक एक दूसरी शक्तिका वर्णन करते हैं जो हमें रोगसे बचा सकती है।

रोग-संहारक-शक्ति (Immunity)

जब किसी रोगका कीटाणु मनुष्य शरीरमें श्वास या भोजन द्वारा प्रवेश करता है तो उसकी सूचना तुरन्त शरीरकी अध्यक्ष प्राणसत्ता (Vital force) को होती है और रक्तमें एक प्रकारकी हलचल सी मच जाती है जो उस समय तो हमें अनुभव नहीं होती, पर हमारी प्राणसत्ता तुरन्त अपनी सहायक सेना रक्तकोषोंको आज्ञा देती है कि इन शत्रुओंको मारकर भगा दो या खा जाओ। अतएव रक्तके श्वेत कण इन कृमियोंको पकडकर अपनी ओर खींच कर दबा लेते हैं और अपनेमेंसे एक प्रकारका उफान खाया हुआ रस छोडते हैं जिससे कृमियोंको अपनेमें हजम कर जाते हैं। दूसरी ओर कृमि उसी शीघ्रताके साथ जैसा कि पहले बताया जा चुका है, अपनी सन्ततिको बढाते हुए इन पर आक्रमण करते हैं। जिस मनुष्यका वीर्य आदि अधिक व्यय नहीं हुआ है उसके रक्तमें इन संग्रामकर्ता सिपाहियोंकी संख्या बहुत अधिक होती है। अब यदि यह सैनिक लडाईमें जीत जाते हैं तो रोग कृमियोंका नाश हो जाता है और हमें ज्ञात भी नहीं होता कि हमारे ऊपर किसी रोगका आक्रमण भी हुआ था; किन्तु जब कृमि इस संग्राममें आक्रमण करते हैं कि निर्बल शरीरके रक्तकोष उनको पराजित नहीं कर सकते, तो कृमियोंका शरीरपर अधिकार हो जाता है जो रोग रूपमें प्रकट होता है।

पाठकोंमेंसे बहुतोंने किसी बढ़िया बायस्कोपकी फिल्मों-में इस स्थानका दृश्य देखा होगा जो न केवल रोचक हो वरन् स्वास्थ्य विषयक ज्ञानको बढ़ानेवाला है। यदि ग्राम निवासी तथा नगर-निवासी भी जो चन्दा करके नाच, स्वाँग, नौटंकी आदि कराया करते हैं, इस प्रकारके तमाशे कराया करें, तो उनके मैले-कुचैले रहनेके स्वभावमें और तम्बाकू, मदिरा आदि पीनेकी लतमें शीघ्र परिवर्तन संभव है।

अस्तु। शरीरकी उक्त शक्तिको डाक्टरोंमें Immunity कहते हैं, जिसे हम रोग-संहारक शक्ति कह सकते हैं। यह शक्ति हमारे शरीरमें कुछ तो जन्मसे ही साथ आती है और कुछ शरीर वर्धनके साथ-साथ बढ़ती है। हाँ। यदि बाल्यावस्थामें ही हम निर्बल हो जावें, हमारा भोजन अशुद्ध, विकृत, असंतुलित हो, या हमें पर्याप्त मात्रामें धूप, शुद्ध वायु एवं प्रकाश न मिले और सीलके स्थानमें रहना पड़े तो हमारे शरीरमें यह शक्ति बढ़ती नहीं और हम शीघ्र रोगी हो जाते हैं।

अब आपको ज्ञात होगया कि इसी रोग संहारक शक्ति के कारण नित्य प्रति रोग-उत्पादक असंख्य कृमि हमारे शरीरमें प्रवेश करने पर भी हमें रोगी नहीं बना सकते।

उल्लिखित बातोंको ध्यानमें रखते हुए विचार कीजिए कि हवन यज्ञसे रोग रक्षा कैसे होती है—

(१) जैसा कि अन्यत्र बता चुके हैं, पदार्थ विज्ञानसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी वस्तुका नितांत अभाव नहीं होता, केवल आकार परिवर्तित होजाता है। अतः यज्ञ-अग्निमें डाले हुए पदार्थ नष्ट नहीं होते, उनका आकार बदल जाता है। यह भी अन्यत्र बता चुके हैं कि अग्निमें पड़कर वस्तुएँ शुद्ध और शक्तिशाली हो जाती हैं। यज्ञ-अग्नि द्वारा ओषधियोंके परमाणु सूक्ष्म कर दिए जाते हैं, जो अणुशक्तिके सिद्धान्तके आधारपर अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा असंख्य-गुणा अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। अतः जो पदार्थ हवनमें डाले गए उनके सूक्ष्म परमाणु हमारे शरीरमें श्वास द्वारा पहुँच कर शरीरका भाग बन गए। अब वे परमाणु स्वास्थ्यप्रद परमाणुओंको तो अपनी ओर आकृष्ट करेंगे और रोगके कृमियोंको दूर भगाएँगे जैसा कि वेद भगवान्ने बताया है—

ओ३म् ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि॥ अथर्व. १।२।२

(इस सूक्तका देवता इन्द्र है।)

अर्थ— हे (इन्द्र) यज्ञ! (ज्याके) सबके हित (आ) हमको (परि) सर्वथा (नम) तू झुका। (तन्वं) हमारे शरीरको (अश्मानम्) पत्थरसा सुदृढ़ (कृधि) बना दे। (वीडुः) तू दृढ़ होकर (अरातीः) विरोधी (द्वेषांसि) दोषोंको (अप) हटाकर (वरीयः) बहुत दूर (आ कृधि) कर दे।

इसका तात्पर्य यही है कि यज्ञसे शरीर पुष्ट होता है और दोष (रोग कृमि) दूर भागते हैं।

(२) रक्तके श्वेत कण रोग कीटाणुको अपनेमें फँसाते हैं और घृत, काफूर, गूगल आदिका गुण कृमि नाश करनेका है। अतः जब इन ओषधियोंके सूक्ष्म परमाणु कोषोंमें विद्यमान हो जावेंगे, तो जहाँ शक्करके परमाणुओंसे उनको रोग कृमि पकड़नेमें सुविधा होगी, वहाँ इन ओषधियोंके कृमिनाशक गुणसे रोगकृमि अधिक संख्यामें शीघ्र नष्ट हो जावेंगे।

(३) रक्तके कोष अपने उफानवाले रससे कीटाणुओंको हजम करते हैं। प्रकृतिका नियम है कि गर्मीसे उफान शीघ्र उत्पन्न होता है। शरद् ऋतुमें जिस गुँधे आटेमें २४ घंटेमें उफान पैदा होगा; ग्रीष्म ऋतुमें ६ घंटेमें ही उत्पन्न हो जायगा। हवनकी गर्म वायुके साथ जब इन कोषोंतक पँहुचेगी तो इनमें उफान उत्पन्न होनेकी शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होगी, जिससे वह रोग कीटाणुओंको शीघ्र और सुग-मतासे समाप्त कर सकेंगे।

(४) सीलके स्थानपर बालकमें Immunity (रोग संहारक शक्ति) कम पैदा होती है, जब कि प्रकाश, वायु, धूप और गर्मीमें अधिक होती है, यह बताया जा चुका है। अब यह प्रत्यक्ष ही है कि हवनसे सील दूर होगी और प्रकाश तथा गर्मी उत्पन्न होगी। अतः इसके प्रभावसे शरीरमें रोगसंहारक शक्ति अधिक उत्पन्न होगी, जिससे शरीर रोगके आक्रमणोंसे अधिक बलपूर्वक मुकाबला कर सकेगा।

(५) यकृत एवं प्लीहाके कोषोंमें रोग कीटाणु मारनेकी अधिक शक्ति है, ऐसा डाक्टरोंका मत है। जिसके यकृत (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) स्वस्थ हैं, वह सरलता-पूर्वक रोगसे मुक्त रह सकेगा। यह साधारण मनुष्य भी जानते हैं कि सीलनवाले स्थानमें जहाँ मैलेरिया अधिक होता है, यकृत व प्लीहा पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है जब कि ओषजनयुक्त वायुमें वे अच्छे रहते हैं। हवन यज्ञसे चूंकि सीलन दूर होगी और आक्सीजन युक्त वायु अधिक बनेगी, अतः, यकृत और प्लीहा भी स्वस्थ रहकर रोगसे हमारी रक्षा कर सकेंगे।

× × ×

ऋग्वेद

यजुर्वेद

दैवत-संहिता

[चारों वेदोंका देवतानुसार मंत्रसंग्रह]

सम्पादक

म. म. ब्रह्मर्षि पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विद्या-मार्तण्ड, साहित्य-वाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

★

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

सामवेद

अथर्ववेद

दैवत-संहिता

भूमिका

भारतीय संस्कृतिका मूल स्रोत-वेद

भारतीय संस्कृति विश्वके अन्य देशोंकी संस्कृतिमें सबसे प्राचीन एवं सर्वश्रेष्ठ है। जिस समय सारा संसार अज्ञानान्धकारसे आवृत्त था, उस समय भारतकी संस्कृतिका प्रभाव चारों ओर फैल रहा था। उस समयके भारतका चित्रण मनुजीने इस प्रकार किया है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

'पृथिवीके सब मानव इस भारतखण्डपर अपने अपने चरित्रकी शिक्षा लेनेके लिए आते थे।'

इस संस्कृतिमें महर्षियों द्वारा मानवजीवनकी हर तरहकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त किया गया है। आज भी जहां अन्य देशोंकी संस्कृतिका पतातक नहीं चलता, हमारी भारतीय संस्कृति पूर्वके समान ही सर्वातिशायिनी बनी हुई है। इसका कारण यह है कि इस संस्कृतिका स्रोत ही वेद हैं। वेद नित्य हैं, अपरिवर्तनशील हैं तथा भ्रान्ति आदियोंसे सर्वथा रहित हैं। वेद ही वास्तवमें वह गंगोत्तरी है, जहांसे भारतीय संस्कृतिकी गंगा प्रवाहित होती है। भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति दोनों एक ही हैं। इस संस्कृतिका शुद्ध रूप वेदोंमें ही मिल सकता है।

वेद ईश्वरीय वाणी है, ※ जो सृष्टिके प्रारंभमें मनुष्योंकी आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक उन्नतिके लिए प्रकट हुई थी। इसमें मानवजीवनके हर पहलूपर विचार किया गया है, या यूं कहना चाहिए कि मानवकी सर्वांगीण उन्नतिका मार्ग इसमें दिखाया है। वेद स्वयं इस बातकी घोषणा करता है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।

यजु. २६।२

'मैं जनोंके हित करनेवाली इस वाणीको बोलता हूँ।'

वेदोंमें मनुष्यकी हर समस्याका समाधान प्रस्तुत है। मनुष्य जातिके कल्याणार्थ उसके अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्तिका सत्य और सरल मार्ग इन वेदोंमें प्रकाशित किया है। ये वेद अखिल विद्या विज्ञानोंके भण्डार हैं। वैदिकोत्तर सभी साहित्यमें इनका महत्त्व बहुत बडे पैमानेपर वर्णित है।

वैदिक संस्कृतिकी विशेषता

वैदिक संस्कृतिकी सर्वप्रथम विशेषता है– समन्वयवाद। वह न बिल्कुल अध्यात्मवादी है और न बिल्कुल भौतिकवादी। उसमें दोनोंका समन्वय है। मानवजीवनके लिए दोनों ही अत्यावश्यक हैं। आजकी पाश्चात्य संस्कृति एकांगी है। वह केवल भौतिक उन्नतिपर ही ज्यादा जोर देती है, अतः इस संस्कृतिका उपासक भौतिकतामें तो बहुत उन्नति कर लेता है, पर आध्यात्मिकतामें पिछडा रह जाता है।

※ १ एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्।
एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः॥ श. ब्रा. १४।५।४।१०

२ सः प्रजापतिः श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्॥ श. ब्रा. ६।१।१।८

वेदोंमें इहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिपर समान जोर दिया है। वैदिकोत्तर स्मृतियोंमें धर्मका लक्षण ही यह किया है कि अभ्युदय और निःश्रेयसकी उन्नति सिद्ध करनेवाला ही धर्म है। + । वैदिक संस्कृतिमें वे सारे तत्त्व पूर्णमात्रामें मौजूद हैं, जो मनुष्यको आदर्श बना सकते हैं। वैदिक संस्कृतिमें आत्मा और परमात्मामें दृढ विश्वास रखती है। यह विश्वास मनुष्यमें आध्यात्मिकता उत्पन्न करता है। वैदिक संस्कृति प्रकृति और उससे बने भौतिक शरीर-की सत्ताको स्वीकार करती है और इसीलिए शरीरकी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिए सब प्रकारकी प्राकृतिक उन्नति करनेकी भी प्रेरणा देती है। वेदोंमें आदेश है कि मनुष्य इस संसारमें रहकर उत्तमोत्तम भोग भोगे।

वेदका मनुष्य कहता है—

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः
अहं धनानि संजयामि शश्वतः। ऋ. १०।४८।१

' मैं धनका सबसे प्रथम स्वामी हूँ, मैंने हमेशा धनोंको जीता है। '

और जगह जगह परमात्मासे भी प्रार्थना की गई हैकि ' हे परमात्मन्! हमें उत्तम उत्तम धनोंका स्वामी बनाइये ' ' हमें गाय, घोडे और सुवर्ण आदि धन सहस्त्रोंकी संख्यामें दीजिए '। इस प्रकार वेदमें भौतिक उन्नति करनेकी भी प्रेरणा है। यह संसार हमारा घर है, हम इसके स्वामी हैं। हमें सुख देनेके लिए ही परमात्माने इस संसारका निर्माण किया है। महात्मा बुद्धने इसके विपरीत लोगोंको यह ज्ञान दिया कि ' संसार क्षणभंगुर है, यह अत्यन्त दुःखमय है, अतः हे मनुष्यो! यह संसार हेय है। इसको छोड दो और संन्यासी या भिक्षुक होकर यहां रहो '। पर वेद इसके विपरीत लोगोंको आदेश देता है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।
यजु. ४०।२

' हे मनुष्यो! इस संसारमें तुम शुभ कर्म करते हुए सौ वर्ष तक आनन्दसे जीवो '। वेदके पुरुष-सूक्तमें तथा गीता-के ग्यारहवें अध्यायमें यह बात बडे विस्तारसे समझाई है कि यह विश्व सच्चिदानन्द परमात्माका ही रूप है। आनन्द-मय परमात्मा इसमें सर्वत्र व्याप्त है। उसका व्याप्तस्वरूप पवित्र है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। ऋ. ९।८३।१

अतः जो विश्व आनन्दमय परमात्माका रूप है, वह दुःख-मय कैसे हो सकता है? यह जगत् पंचभूतात्मक है। ये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पंचभूत भी हमें सुख ही देते हैं। पृथिवी हमें आधार देकर, जल हमारी

---

३ ' शास्त्रयोनित्वात् ' वे. सू. १।१।३
महतः ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य अनेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञ गुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति। ऋग्वेदाद्या-ख्यस्य सर्वज्ञानाकरस्य अप्रयत्नेनैव लीलान्यायेन पुरुषनिःश्वासवत् यस्मान्महतो भूतात् योने संभवः। (शांकर-भाष्य)

४ न पौरुषेयत्वं तत्कर्त्तुः पुरुषस्याभावात्– सां. सू. ५।४६
वेद पौरुषेय नहीं, क्योंकि उसका बनानेवाला कोई पुरुष नहीं हो सकता।

५ यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥ सायण, ऋग्वेदभाष्य=प्रस्तावना।

६ अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
वेद शब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः ॥ महाभारत शान्ति पर्व २३२।२४–२६

७ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ऋ. १०।९०।९

× × ×

यस्मादृचोऽपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाऽगिरसो मुखम् ॥ अथर्व. १०।७।२०

+ वैशेषिक द. १।२।२

प्यास बुझाकर, अग्नि हमें उष्णता देकर, वायु हमें जीवन या प्राण देकर और आकाश हमें अवकाश देकर सब तरहसे सुख प्रदान करता है। जब ये पांचों भूत हमें सुख देनेवाले हैं, तो उनसे बना हुआ विश्व हमारे लिए दुःखदायी कैसे हो सकता है?

अतः यह विश्व मनुष्यको सुख प्रदान करनेवाला है। पर जब मानव इन्हींको अन्तिम ध्येय समझकर इनमें सर्वथा लिप्त हो जाता है और अध्यात्मकी उपेक्षा कर देता है, तब वह दुःखी होजाता है। इसीलिए वेद कहता है—

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः
मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। यजु. ४०।१

"हे मनुष्यो! इन सांसारिक भोगोंका त्यागभावसे भोग करो। कभी लालच मत करो। यह सब समाजका धन है।" त्यागभावसे किया हुआ कर्म कर्ताके लिए कभी भी दुःखका कारण नहीं बनता।

इस प्रकार वेदने दूसरे पक्ष निःश्रेयसपर भी अत्यधिक बल दिया है। अथर्ववेदमें इसीको मानवजीवनका अन्तिम लक्ष्य बताया है—

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं
ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥
अथर्व. १९।७१।१

"हे देव! मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यश, धन और ब्रह्मतेज ये सब देकर अन्तमें ब्रह्मलोक (मोक्ष) भी प्राप्त कराओ।"

संसार और जीवनका उद्देश्य हमारा उत्तरोत्तर विकास है। उत्तरोत्तर विकासका ही नाम अमृतत्त्व है+। यही निःश्रेयस है×।

वैदिक संस्कृतिकी दूसरी विशेषता है "प्रगतिशीलता"। यह संस्कृति अपने अर्थोंमें कभी संकुचित नहीं रही। वेदमें कई ऐसे शब्द हैं, जो वैदिककालमें किसी एक निश्चित अर्थके द्योतक थे पर आज उनका अर्थ बहुत विस्तृत हो गया है।

उदाहरणार्थ— 'यज्ञ' शब्दको ही ले सकते हैं। वैदिककालमें इसका प्रयोग देवताओंके लिए किए जानेवाले अग्निहोत्रादि कर्मके लिए ही होता था, पर बादमें अनेक अर्थोंमें इसका प्रयोग होने लगा। इसी परिवर्तित अर्थको लेकर गीतामें ● वैदिक यज्ञोंके साथ साथ ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ आदि यज्ञोंका भी वर्णन है। महर्षि दयानन्दने तो इसको और विस्तृत अर्थमें लेकर अपने आर्योद्देश्यरत्नमालामें लिखा है- "शिल्प-व्यवहार और पदार्थविज्ञान जो कि जगत्के उपकारके लिए किया जाता है, उसको (भी) यज्ञ कहते हैं।"

इसी प्रकार पहले वेद शब्द केवल ऋग्, यजु, साम और अथर्व इनको ही कहा जाता था। पर कालान्तरमें ब्राह्मण और उपनिषदोंको भी वेद नामसे पुकारा जाने लगा। (मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्)

वैदिक संस्कृतिकी तीसरी विशेषता है "असाम्प्रदायिकता।" वेद किसी विशेष जाति, या सम्प्रदायका धन नहीं है। उसका प्रकाश परमेश्वरने सम्पूर्ण मानवजातिके हितके लिए किया था। वेदके मंत्रसे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।
यजु. २६।२

"मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, आर्य और सेवक सभी मनुष्योंके हितके लिए इस कल्याणी वाणीका-वेदका-उपदेश करता हूँ।"

अन्य सम्प्रदायोंकी तरह वैदिकधर्म कभी यह नहीं कहता कि तुम हमारे धर्ममें दीक्षित हो जाओ, तभी तुम मोक्षपदके अधिकारी हो सकोगे। उसका तो यही कथन है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी जाति, सम्प्रदाय या मतका हो, उत्तम कर्म करके मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है। इसीको अथर्वमें इस प्रकार कहा है—

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः
सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥ अथर्व. १७।१।२७

"मैं प्रजापतिके ज्ञानरूपी कवचसे ढका हुआ तथा सूर्यके तेज और वर्चसे युक्त होकर वृद्धावस्थापर्यन्त क्रियाशील रह कर अनन्तकालतक उत्तम कर्म करता रहूँ।"

+ जीवा ज्योतिरशीमहि। (ऋ. ७।३२।२६);
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।...तत्र माममृतं कृधि (ऋ. ९।११३।११

× भारतीय संस्कृतिका विकास— वैदिकधारा– डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. १०

● गीता ४।२५-३०,३२

" इस प्रकार चिरकालसे विचार संकीर्णता और परस्पर संघर्षकी भावनासे परिपूर्ण सम्प्रदायवाद तदभिभूत दार्शनिक साहित्य और जातिपातिके भेदभावसे जर्जरित भारतीय जनतामें एक जातीयताके नवीन जीवनका संचार करनेके लिए एकमात्र प्रगतिशील तथा असाम्प्रदायिक वैदिक संस्कृतिके आदर्शका ही आश्रय लिया जा सकता है। " ×

वैदिक संस्कृतिकी चौथी विशेषता है " ममत्वकी भावना। " वैदिक संस्कृति तो वह गंगा है, जो अज्ञात स्थलसे निकल कर अनेक छोटे-मोटे विचाररूपी नदियोंको अपने अन्दर समेटती हुई लोगोंको शान्ति प्रदान करती है। वैदिक संस्कृतिका मुख्य ध्येय है, लोगोंमें ममत्वकी भावना उत्पन्न कर जगतमें शान्ति स्थापित करना।

ममत्व भावनासे समाजको संगठित करना ही वेदका एक मात्र लक्ष्य है। जबतक समाजका संघटन नहीं होता, तब तक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्वका उत्कर्ष आकाशपुष्पके समान है। प्रत्येक व्यक्ति समाजका एक आवश्यक अङ्ग है। जिस प्रकार शरीरके अंगोंकी एकात्मता उत्कृष्ट स्वास्थ्यका लक्षण है, उसी प्रकार समाजके व्यक्तियोंका ऐक्य स्वस्थ समाजका निदर्शक है। ऋग्वेदका पूरा संगठन-सूक्त इस महत्त्वपूर्ण विचारको लोगोंके सामने प्रस्तुत करता है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाः भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥
समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

ऋ. १०।१९१।२,४

" तुम संगठित होकर चलो, संगठित होकर बोलो और तुम्हारे मन भी परस्पर अनुकूल हों। तुम्हारे संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन एक हों। "

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजु. ५।३४

" मैं सब प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूं और सब प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें। "

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

यजु. ४०।६,७

" जो सारे प्राणियोंको अपनी आत्माके समान ही देखता है व उन्हें उसी प्रकार जानता भी है तथा सारे प्राणियोंमें स्वयंको देखता है, वह कभी किसीमें भेदभाव नहीं करता। "

इसी प्रकार अन्यान्य मन्त्रोंमें भी ममत्व-भावनाका उत्तम वर्णन आता है।

इस ममत्व-भावनाके होनेपर ही हम अपनी अपनी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओंको पृथक् रखके भारतके समस्त महान् व्यक्तियोंमें, चाहे वे किसी सम्प्रदायके या जातिके कहे जाते हों, ममत्वका, समादरका, श्रद्धाका अनुभव करेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम उनको उस कैदसे निकालकर खुले असाम्प्रदायिक वातावरणमें लावें, जिससे उनके उपदेशामृत-का लाभ समस्त देशको ही क्यों, सारे संसारको हो।

वैदिक संस्कृतिकी पांचवी विशेषता है " अखिल भारतीय-भावना "। वेदोंका प्रकाश सर्वप्रथम इसी भारत भूपर हुआ। अतः यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वैदिक संस्कृतिका उद्गमस्थल भी यही है। वेदोंमें अपनी मातृभूमिके प्रति जो उदात्त भावनायें प्रकट की गई हैं, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अथर्ववेदका पूरा " पृथिवी-सूक्त " (१२।१) मातृभूमिके गुणोंको गाता है। वैदिक ऋषियोंका सारा प्रेम इस भारत भूपर उमड पडा है। वे उच्चस्वरसे घोषणा करते हैं—

माता भूमिः पुत्रोअहं पृथिव्याः।
× × ×
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।

' हे मातृभूमे! तू मेरी माता है, मैं तेरा पुत्र हूँ। अतः मैं सब प्रकारसे तुझे अपनी बलि देनेके लिए तत्पर हूँ। '

देशकी रक्षा अपने हर पुत्रसे बलिदानकी कामना करती है। मातृभूमिकी दृष्टिमें अमीर-गरीब, उच्च-नीच, काले-गोरे, आस्तिक-नास्तिक सब एक समान हैं। सब उसके पुत्र हैं, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय, जाति या वर्णका हो। यह भारतीय भावना वैदिक संस्कृति द्वारा वैदिक ऋषियोंने लोगोंमें भरनेका प्रयत्न किया। वैदिक संस्कृतिकी अखिल भारतीय भावनाका अभिप्राय यही है कि हम साम्प्रदायिक संघर्षकी समस्याका समाधान वैदिक संस्कृतिकी दृष्टिसे कर सकें। उनमें एकता स्थापित कर सकें।

इसी एकता-स्थापनकी दृष्टिसे हमारे पूर्वजोंने तीर्थयात्रा-की कल्पना की थी। शंकराचार्यजीने भारतके चारों कोनेपर चार पीठ इसीलिए स्थापित किए थे कि उनके शिष्य भार-

× भारतीय संस्कृतिका विकास– वैदिकधारा– डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. २४

तकी चारों कोनोंसे सुरक्षा कर सकें। प्राचीन साहित्योंमें तीर्थयात्रामें पैदल यात्राका बडा महत्व वर्णित है। वह भी इसीलिए कि सब भारतमें एकता स्थापित हो। रामेश्वरम्से कैलास या जगन्नाथपुरीसे द्वारिका जानेवाले पदतीर्थयात्रीको पूरा भारत पार करना पडता था। इस प्रकार वह अनेक प्रान्तोंके निवासियोंसे अपना सम्पर्क साधकर चलता था। और उनमें आपसमें प्रेम और स्नेह भाव बढता था। इस प्रकार सहज ही एकता स्थापित हो जाती थी। इसको हमारे देशके प्राचीन नेताओंने अच्छी तरह अनुभव किया था। इसी लिए हमारे धार्मिक तीर्थस्थान देशके कोने-कोनेमें नियत लिए गए थे। सम्प्रदायोंमें परस्पर समादर और सम्मानकी भावना स्थापित करनेसे, ऐसे जातीय पर्वों और महापुरुषोंकी जयन्तियोंकी स्थापनासे उनमें स्नेह सम्पर्क स्थापित करनेसे ही एकता सिद्ध होसकती है।

वैदिक संस्कृति-परम्परामें वेदकी प्रतिष्ठा

वैदिक संस्कृतिका उद्गम वेदसे ही हुआ है। वही सबसे परम प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। अन्य स्मृति आदिकी प्रामाणिकता वेदोंकी अनुकूलतापर ही निर्भर है। यदि वे वचन वेदवचनोंके अनुकूल हैं, तो तो प्रामाणिक हैं अन्यथा नहीं। पर वेदवचनोंकी प्रामाणिकता परखनेके लिए स्वयं वेद ही प्रमाण हैं। ※ भारतकी सारी परम्परा वेदको अपनी संस्कृतिके उद्गम स्थानके रूपमें देखती है। वेदोत्तर ग्रंथोंमें इन वेदोंका वर्णन बहुत बडे पैमाने पर किया है। इस विषयमें कतिपय ग्रंथोंके वेद विषयक वचन उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

शतपथ ब्राह्मणमें—

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उस महान् पुरुषके निःश्वासके समान हैं। ·|·'

'उस परमात्माने श्रम और तपके द्वारा त्रयी विद्याको प्रकट किया।'

शतपथ ब्राह्मणके अनुसार वेदोक्त सब विद्यायें सत्य हैं—

तद्यत्सत्यं त्रयी सा विद्या। श. ब्रा. ९।५।१।१८

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें—

अयं वै सर्वा विद्याः। तै. ब्रा. ३।१०।११।४

सारी विद्यायें वेदमें हैं।

सब सत्य विद्यायें वेदोंमें निहित हैं।

ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ। तै. १।४।४।९

ऋग्वेद और सामवेद सरस्वतीके झरने हैं। 'जिस प्रकार झरनेसे पानीकी धारायें निकलकर प्यासे और सन्तप्त प्राणियोंकी प्यास बुझाकर उन्हें शान्ति प्रदान करती हैं, उसी प्रकार वेदसे ज्ञानकी धारायें निकलकर दुःखी मनुष्योंको शान्ति प्रदान करती हैं' +।

वेद ही उस परमात्माको जाननेके साधन हैं। 'वेदको न जाननेवाला उस महान्को नहीं जान सकता' ×।

इसी प्रकार उपनिषदोंमें भी वेदविद्याका बडा महत्व बताया है। ईशोपनिषद् तो यजुर्वेदका ४० वां अध्याय है, जिसमें अध्यात्मज्ञानका उपदेश बडे सुन्दर शब्दोंमें दिया है।

मनुस्मृतिमें वेदके विषयमें कहा है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (२।६)
सर्व ज्ञानमयो हि सः (२।७)
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥ (१२।९७)
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥ (२।१६६)
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ (२।१६८)

अर्थात् वेद धर्मका मूल है और वह सब ज्ञानोंसे युक्त है। चार वर्ग, तीन लोक, चार आश्रम, भूत, वर्तमान,

---

※ निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्- सां. सू. ५।५१- परमात्माकी निजशक्तिसे प्रकट होनेके कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं।

·|· (१) एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्।
एतद् यदृग्वदो, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः॥ श. ब्रा. १४।५।४।१०
(२) सः श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। श. ब्रा. ६।१।१।८

+ वेदका राष्ट्रीय गीत- प्रियव्रत वेदवाचस्पति। पृ. ३

× नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्। तै. ३।१२।९।७

भविष्य सब कुछ वेदसे ही सिद्ध होता है। वेदाध्ययन ब्राह्मणका सर्वोत्तम तप है। जो ब्राह्मण वेदोंको छोडकर अन्य वेदोत्तर ग्रंथोंके अध्ययनमें श्रम करता है, वह शीघ्र कुल सहित शूद्र बन जाता है।

वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातुसे सिद्ध हुआ है, जिसका अर्थ है ज्ञान। प्राचीनकालमें इसी अर्थमें वेद शब्दका प्रयोग होता था। पर कालान्तरमें जाकर उसका अर्थ संकुचित हो गया और आपस्तम्ब सूत्रके कालमें केवल मंत्र व ब्राह्मण भागका ही नाम वेद रह गया ● और आगे चलकर केवल संहिता या मंत्र भागका ही नाम वेद रह गया। इस मतका पोषण महर्षि दयानन्दने अपने ग्रंथोंमें किया है।

चेकोस्लोवाकिया देशकी भाषामें आज भी विज्ञान या सायन्सको 'वेद' कहते हैं। +

अन्तिम मतके अनुसार ऋग्, यजु, साम और अथर्व ये चार ही संहिता या वेद हैं।

वेदत्रयी

मनुस्मृति, गीता आदि ग्रंथोंमें त्रयी विद्याका भी उल्लेख है × इसी आधार पर कई लोगोंका यह मत है कि प्रथम ऋग्, यजु और साम ये तीन ही वेद थे और अथर्व बादमें वेदोंमें शामिल किया गया। कतिपय विचारक उसे वेद ही नहीं मानते ÷। पर हमारा मत यह है कि जहां जहां चार वेदोंका उल्लेख है, वहां उसका अभिप्राय चार वेद ग्रंथोंसे हैं और जहां त्रयीका उल्लेख है वहां उसका अभिप्राय है पद्य, गद्य और गायन। मीमांसा सूत्रोंमें इस समस्याका समाधान प्रस्तुत किया है—

ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था
गीतिषु सामाख्या
शेषे यजुः शब्दः (मीमांसा दर्शन २।१।३५-३७)

'अर्थके कारण पादबद्ध व्यवस्थावाले मंत्र ऋक् हैं। गायन किए जानेवाले मंत्र साम हैं। और बाकी बचा हुआ गद्य भाग यजु है।' इस प्रकार अथर्ववेदके मंत्र पादबद्ध होनेके कारण अथर्ववेदका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है। अतः वेदोंके ग्रंथ चार होनेपर भी उनका समावेश (१) पद्य (ऋग्वेद, अथर्ववेद), (२) गद्य (यजुर्वेद) और (३) गायन (सामवेद) इन तीनोंमें हो जाता है। इसलिए वेदत्रयी या वेद चतुष्टयमें मूलतः कोई भेद न होकर केवल दृष्टिका ही भेद है।

ऋग्वेदसंहिता

यह संहिता सबसे बडी और प्राचीन है। इससे अधिक प्राचीन ग्रंथ किसी भी पुस्तकालयमें नहीं मिलता। महाभाष्यके अनुसार इस वेदकी इक्कीस शाखायें थीं ꣿ पर आज उनमें केवल पांच शाखायें ही उपलब्ध हैं। आजकी प्रचलित ऋग्वेद संहिता शाकल शाखासे सम्बन्धित है।

इस संहितामें दस मण्डल हैं। एक मण्डलमें अनेक सूक्तोंका संग्रह है। इस संहिताके मण्डल, सूक्त और मंत्रोंकी तालिका इस प्रकार है—

मण्डल	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
प्रथम मण्डल	१९१	२००६
द्वितीय मण्डल	४३	४२९
तृतीय मण्डल	६२	६१७
चतुर्थ मण्डल	५८	५८९
पंचम मण्डल	८७	७२७
षष्ठ मण्डल	७५	७६५
सप्तम मण्डल	१०४	८४१
अष्टम मण्डल	९२	१६३६
नवम मण्डल	११४	११०८
दशम मण्डल	१९१	१७५४
	१०१७	१०४७२

जिससे स्तुतिकी जाए उसे ऋक् कहते हैं। ※ इस संहितामें प्रत्येक सूक्तके पहले ऋषि, देवता और छन्दका नामोल्लेख है। इनमें 'ऋषि' शब्दके विषयमें विद्वानोंका मतभेद है।

● मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा सूत्र ३१)

\+ भारतीय संस्कृतिका विकास— डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. ५६- फुटनोट २

× त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि- श. ब्रा. ४।६।७।१
त्रयं ब्रह्म सनातनम् ··· ऋग्यजुः सामलक्षणम्- मनु. १।२३

÷ न्यायमंजरी- प्रमाण प्रकरण।

ꣿ एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्— महाभाष्य पस्पशान्हिक।

※ ऋग्भिः शंसन्ति— निरुक्त १३।७

कुछका मत यह है कि ये ऋषि केवल मंत्रद्रष्टा या उन उन मंत्रोंका साक्षात्कार करनेवाले थे, (ऋषयो मंत्र-द्रष्टारः) ● तथा अन्योंका मत है कि ये ऋषि उन उन सूक्तों या मंत्रोंके रचयिता थे। ※ इस विषयमें मतभेद चाहे कुछ हो, पर यह निर्विवाद सत्य है कि हर सूक्तमें ऋषिका महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार जिस सूक्तमें जिसकी स्तुति की गई है, वह उस सूक्तका देवता है। और प्रत्येक मंत्र छन्दोंसे नियंत्रित है। इस प्रकार वेदोंमें ऋषि, देवता और छन्द अत्यावश्यक तत्त्व हैं।

यजुर्वेद

यह गद्यभाग है। इसमें आए हुए सभी मंत्रोंको गद्यकी तरहसे बोला जाता है। महाभाष्यमें इसकी १०१ शाखाओंका उल्लेख मिलता है ※ पर आज केवल इसकी पांच शाखायें ही उपलब्ध हैं।

इसके शुक्ल और कृष्ण ये दो भेद हैं। माध्यन्दिन और काण्व ये दो शुक्लकी और तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ ये तीन कृष्ण यजुर्वेदकी संहितायें हैं, इनमें कृष्णको प्राचीन और शुक्लको अर्वाचीन माना जाता है। लोगोंका मत है कि शुक्लमें मंत्र भाग है और कृष्णमें मंत्रोंके साथ-साथ ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित होगए हैं। कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाओंका विस्तार प्रायः दक्षिण भारतमें तथा शुक्ल यजुर्वेदका उत्तर भारतमें है। शुक्लमें भी काण्व-संहिताकी अपेक्षा माध्यन्दिन-संहिताका ज्यादा प्रचार है। प्रायः सारा उत्तर-भारत माध्यन्दिन शाखाकी वाजसनेयी संहिताको प्रामाणिकता प्रदान करता है।

वाजसनेयी संहितामें ४० अध्याय और १९७५ मंत्र या कण्डिकायें हैं।

सामवेद

इसकी अनेक शाखायें हैं। चरणव्यूहमें कहा है—

१ तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीत्।
२ राणायणीयाः, सात्यमुग्याः, कालापः,
महाकालापः, कौथुमाः, लांगलिकाश्चेति।
कौथुमानां षड्भेदाः भवन्ति-सारायणीयाः,
वातरायणीयाः, वैधृताः, प्राचीनाः,
तैजसा, अनिष्टकाश्चेति।

महाभाष्यमें भी इसके शाखा सहस्रका उल्लेख है। + 'साम-तर्पण-विधि' में सामवेदकी तेरह शाखायें बताई हैं। उनके नामोंकी गणना भी की है, जो इस प्रकार है—

१ राणायण, २ शाट्यमुग्न्य, ३ व्यास, ४ भागुरी, ५ औलुण्डी, ६ गौल्गुलवी, ७ भानुमान-औपमन्यव, ८ काराटि, ९ मशक गार्ग्य, १० वार्षगव्य, ११ कुथुम, १२ शालिहोत्र और १३ जैमिनी। सामवेदकी इन शाखाओंमें आज केवल राणायणीय, कौथुमी और जैमिनी ये तीन ही उपलब्ध हैं।

इस वेदके पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक दो भाग हैं। और मंत्र कुल मिलाकर १८७५ हैं।

अथर्ववेद

महाभाष्यमें इसकी नौ शाखाओंका उल्लेख है ×। पर आज शौनक और पैप्पलाद ये दो ही संहितायें मिलती हैं और उनमें भी शौनक संहिताका ही आज प्रचलन अधिक है।

अथर्ववेदमें २० काण्ड, ७३० सूक्त और ६००० मंत्र हैं। इनमें १२०० से अधिक मंत्र स्पष्टतः ऋग्वेदके ही हैं। इस वेदके २० वें काण्डके अधिकांश मंत्र ऋग्वेदके ही हैं।

संहिताओंका विषय व क्रम

ऋग् शब्द स्तुत्यर्थक 'ऋच्' धातुसे बना है। अतः ऋक् शब्द यह सिद्ध करता है कि ऋग्वेदमें देवताओंकी स्तुतियां हैं। ये देव पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीन स्थानोंमें रहते हैं। इसका मुख्य विषय ज्ञान है।

यजुर्वेदका विषय है कर्म। इसके अध्यायोंका क्रम भी कर्मकाण्डकी क्रियाके अनुसार ही रखा गया है। प्रथम अध्यायसे द्वितीय अध्यायके २८ वें मंत्रतक दर्शपूर्णमास यज्ञका वर्णन है। इसी प्रकार ३८ वें अध्यायतक विभिन्न यज्ञोंके सम्बन्धमें मंत्र विनियोगका उल्लेख है। ३९ वें अध्या-

● ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवः-निरुक्त २।११
※ यस्य वाक्यं सः ऋषिः— ऋक्सर्वानुक्रमणी १।२।४
※ एकशतमध्वर्युशाखाः— महाभाष्य, पस्पशान्हिक
+ सहस्रवर्त्मा सामवेदः— महाभाष्य, पस्पशान्हिक
× नवधाथर्वणो वेदः– महाभाष्य, पस्पशान्हिक

यमें सबसे अन्तिम यज्ञ 'अंत्येष्टि' है। पर अन्तके ४० वें अध्यायका सम्बन्ध यज्ञसे न होकर ज्ञानसे है।

सामवेदका विषय उपासना है। इसमें गायनोंसे देवताओंके अर्चन करनेकी विधि बताई है।

अथर्ववेदका विषय विज्ञान है। इसमें जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा, आदि विषयोंका भरपूर वर्णन है।

ऋग्वेदके अध्ययनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऋग्वेदके प्रथम, नवम और दशम मण्डलको छोडकर बाकीके मण्डल ऋषिवार संग्रहीत हैं। एक एक मण्डल एक एक ऋषि पर हैं। जैसे सम्पूर्ण द्वितीय मण्डलका ऋषि 'गृत्समद भार्गव' है, तीसरेका 'गाथी विश्वामित्र' है और चतुर्थका 'वामदेव गौतम' है। प्रथम और दशम मण्डलमें अनेक ऋषि हैं। केवल नवम मण्डल ऐसा है, जो देवता पर आधारित है। इस ११४ सूक्तवाले सम्पूर्ण मण्डलका देवता 'पवमान सोम' है। इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी कई काण्ड ऋषिवार और कई देवतावार संग्रहीत हैं। सामवेदका पूर्वार्चिक भाग देवतावार है। उसमें काण्डों का नाम भी देवताओंके आधार पर है। जैसे आग्नेय काण्डमें केवल अग्नि देवताका वर्णन है। ऐन्द्र काण्डमें इन्द्र संबंधी स्तुतियां है। इसी प्रकार अन्य देवताओंका भी वर्णन है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदोंका संग्रह दो प्रकारसे हो सकता है, (१) ऋषि अनुसार और (२) देवतानुसार।

इन वेदोंमें हमने यह भी देखा कि सभी देवताओंके मंत्र बिखरे पडे हैं। जैसे अग्निका १ सूक्त प्रथम मण्डलका प्रथम सूक्त है, फिर अग्निका दूसरा सूक्त इसी मण्डलका २६ वां सूक्त है। बीचके २४ सूक्तोंमें अन्यान्य देवताओंका वर्णन है। इसी प्रकार दूसरे देवताओंके सूक्त भी बिखरे पडे हैं। इसके अलावा दूसरे वेदोंमें उन्हीं देवताओंके सूक्त आते हैं, जिनके ऋग्वेदमें आए हैं। इससे होता यह है कि किसी एक देवतापर अन्वेषण करनेवाले विद्वान्को चारों वेदोंको देखना पडता है और इसके लिए मंत्रानुक्रमणिका, पदानुक्रमणिका ऐसे अनेक ग्रंथको आवश्यकता होती है, इसके साथ ही उसकी शक्ति और समयका भी बडा व्यय होता है। इन सब कारणोंको ध्यानमें लानेसे हमारे मनमें यह विचार आया कि यदि एक एक देवताके चारों वेदोंमें बिखरे हुए सूक्तोंको एक स्थानपर ले आया जाए, तो अध्ययनकर्ताको बहुत सुविधा हो सकती है। इस प्रकार देवतावार मंत्र संग्रहकी कल्पना हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न हुई और उस कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करने एवं देवताके अनुसार मंत्र संग्रहीत होनेके कारण उस ग्रंथका नाम 'दैवत-संहिता' रखनेका हमने निश्चय किया।

दैवतसंहिताकी आवश्यकता

जब मनुष्य जगत् पर अपनी दृष्टि डालता है, तो उसे सर्वत्र देवताओंके दर्शन होते हैं, जैसे पृथिवी, अग्नि, वायु, मेघ, नदियां, समुद्र, पर्वत, अन्तरिक्ष, आकाश आदि। प्रत्येक मनुष्यको इन देवताओंका दर्शन होता है। ये देवता पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनों स्थानोंमें रहते हैं।

इनमें पृथिवी, जल, पर्वत, अग्नि आदि देवता प्रत्यक्ष हैं और वायु आदि कतिपय अदृश्य हैं। पर इन अदृश्य देवताओंके अस्तित्वको भी मनुष्य जान सकता है। इस प्रकार ये देवगण हर मनुष्यके अनुभवमें आनेके कारण प्रत्यक्ष हैं, काल्पनिक नहीं।

इन देवताओंके बिना मानवजीवनका अस्तित्व ही असम्भव है। यदि वायु न हो, तो प्राणके अभावमें इस भूगोलसे प्राणियोंका अस्तित्व ही न रहे। सूर्य और चन्द्रके अभावमें सारी वनस्पतियां ही समाप्त हो जायें। पृथिवी सबको रहनेके लिए स्थान देती है, जल सबकी प्यास बुझाता है, आकाश सबको आवागमनकी सुविधा देता है। इस प्रकार सभी देवगण हमारी सहायता करते हैं। जिससे कि हम जीवित रहते और अपना कार्य करते हैं। हमारे जीवनके आनन्दमय होनेका सारा श्रेय इन्हीं देवोंको है। इनका और हमारे जीवनका बडा घनिष्ट सम्बन्ध है। मानव जब इन देवोंसे विरोध करता है और इनके द्वारा बताये गए अनुकूल मार्गपर नहीं चलता, तो वह दुःखी होता है। अतः हमारे जीवनकी दुःखमय और सुखमय स्थिति इन्हीं देवताओंपर निर्भर करती है।

परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति, अग्नि, इन्द्र आदि अनेक देवता इस विश्वमें हैं, जो चारों ओर रहकर अपने तेजसे सबका कल्याण करते हैं। ये देवता जैसे विश्वमें हैं, वैसे ही प्राणीके शरीरमें भी हैं। मनुष्यशरीरके प्रत्येक अंगमें किसी न किसी देवताका निवास अवश्य है। इस विषयमें अथर्ववेदका कथन इस प्रकार है—

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥
(अथर्व. ११।१८)

'जब त्वष्टाने इस शरीरका निर्माण किया तो देवोंने इस मर्त्य शरीरको अपना घर बनाया और इसमें आकर वे रहने लगे।' इसी प्रकार इस शरीरमें 'स्वप्न, निद्रा, बुढापा,

बुरेकर्म, बल, ओज, क्षुधा, तृष्णा, श्रद्धा, अश्रद्धा, विद्या, अविद्या आदि सबने प्रवेश किया। इस शरीरमें प्रविष्ट होकर देवोंने यहां यज्ञ करना आरंभ किया। उसमें हड्डियां समिधायें बनीं और वीर्य या रेतस् घी बना। इसी शरीरमें ब्रह्म भी प्रविष्ट हुआ। इसीलिए इस शरीरको विद्वान् 'ब्रह्म' भी कहते हैं। अन्तमें उपसंहार करते हुए अथर्ववेदके ऋषिने एक बडी सुन्दर उपमा दी है—

सर्वा ह्यस्मिन्देवता
गावो गोष्ठ इवासते।
(अथर्व. ११।८।३२)

" जिस प्रकार गायें बाडेमें रहती हैं, उसी प्रकार सब देव इस शरीरमें स्थित हैं "। गायें बाडेमें सुरक्षित रहती हैं और वहां उनका पोषण होता है। फिर जानकार गोपाल उनको दुहता है और दूधसे पुष्ट होता है। इसी प्रकार इस शरीरमें भी देवता सुरक्षित हैं और विद्वान् इन देवताओंको दुहकर उनसे ओज, तेज आदि प्राप्त कर पुष्ट होते हैं। इस शरीरमें स्थित जीवात्मा परमात्माका ही अंश है। गीतामें श्रीकृष्णने इसका प्रतिपादन किया है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

" मेरा (परमात्माका) ही अंश इस शरीरमें जीवके रूपमें स्थित है "। परमात्मा और आत्माके इसी सम्बन्धको दर्शनोंमें अग्नि और चिन्गारीके दृष्टान्तसे स्पष्ट किया है। अग्नि और उसके स्फुलिंगमें परिमाणकी दृष्टिसे भेद होनेपर भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार परमात्मा और आत्मामें भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं हैं।

अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैवत क्षेत्रमें देवताओंका स्थान

अध्यात्मका अर्थ उपनिषद्में शरीर किया है (अथाध्यात्मं शरीरम्)। इस शरीरमें कौनसा देवता किस अंगमें रहता है, वह निम्न तालिकासे स्पष्ट हो सकता है—

शरीरमें	देवताका अंश
आंखमें	सूर्यका अंश
नाकमें	वायुका अंश
मुखमें	अग्निका अंश
छातीमें	चन्द्रका अंश
भुजाओंमें	इन्द्रका अंश
पैरोंमें	पृथिवीका अंश
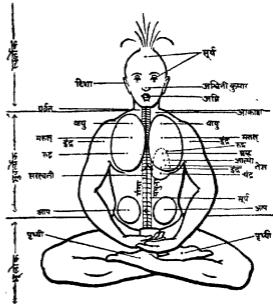
इस चित्रमें यह दिखाया है कि किस देवताका अंश शरीरके किस अंगमें रहता है।

इस प्रकार सभी इन्द्रियोंमें देवताओंके अंश विद्यमान हैं। इसका और अधिक स्पष्टीकरण ऊपरके चित्रसे हो सकता है।

आधिभौतिक क्षेत्रमें

अधिभूतका अर्थ है समाज। इस मानव समाजमें भी देव विभिन्न रूपोंमें स्थित हैं। समाजका भी एक शरीर है जो सर्वदा कार्यव्यस्त रहता है। कौनसा देवता समाजमें किस रूपमें है, यह निम्न कोष्टकसे स्पष्ट होसकता है—

विश्वमें	समाजमें
अग्नि	वक्ता, ज्ञानी
इन्द्र	क्षत्रिय
ऋभु	कारीगर
पृथिवी	शूद्र

इस प्रकार सभी देव समाजमें भी विभिन्न रूपोंमें विद्यमान हैं।

आधिदैविक क्षेत्रमें तो देव प्रत्यक्ष ही हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव आधिदैविकक्षेत्रमें प्रत्यक्षतया कार्य कर ही रहे हैं। इस प्रकार तीनों क्षेत्रोंमें इन देवोंका कार्य चल रहा है। इन तीनों क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले देवोंका संकलन इस प्रकार किया जासकता है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
वाणी	वक्ता	अग्नि
शौर्य	शूर	इन्द्र
युद्धेच्छा	सैनिक	मरुत्
प्राण	प्राणी	वायु
कारीगरी	कारीगर	त्वष्टा
ज्ञान	ज्ञानी	ब्रह्मणस्पति
पांव	शूद्र	पृथिवी
नाडियां	नदियां	आपः, जलप्रवाह

इस प्रकार व्यक्तिमें गुण रूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देव रहते हैं।

विश्व--एक विराट् शरीर

वेदोंमें विश्वका वर्णन एक शरीरके रूपमें है। वह एक विराट् शरीर है। व्यक्ति-शरीरमें जिस प्रकार आत्माका स्थान प्रमुख है, उसी तरह इस विराट्-शरीरमें परमात्मा मुख्य है। उसके भी आंख, नाक आदि अंग हैं। अथर्ववेदमें इस विराट् शरीरका वर्णन इस प्रकार है—

> यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
> दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
> यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
> अग्निं यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
> यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन्।
> दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
> (अथर्व. १०।७।३२-३४)

" भूमि जिसके पैर, अन्तरिक्ष पेट और द्यौ सिर है, उस महान् ब्रह्मको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र जिसकी आंखें हैं, अग्नि जिसका मुख है, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है। वायु जिसके प्राण और अपान हैं, अंगिरस् जिसकी आंखें हैं तथा दिशायें जिसके कान हैं उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है "।

इसी प्रकार इस विराट् शरीरके सहस्त्रों मस्तकका भी वेदमें वर्णन है—

> सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
> स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥
> पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
> उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति॥
> ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
> उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥
> चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
> मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥
> नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
> पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्
> तथा लोकाँ अकल्पयन्॥
> (ऋ. १०।९०।१, २, १२, १४)

' हजारों सिर, हजारों आंख और हजारों पैरवाला एक विराट् पुरुष इस भूमिको चारों ओर व्याप्त किए हुए है। यहां जो कुछ हो चुका है, जो है और आगे जो भी होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य दोनों जांघें और शूद्र पैर हैं। इस विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि और प्राणसे वायु प्रकट हुआ। नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे द्यौ, पैरोंसे भूमि और कानसे दिशायें उत्पन्न हुईं। '

गीताके ११ वें अध्यायमें इस विराट् पुरुषका बडे विस्तारसे वर्णन है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको अपने विराट् स्वरूप दिखानेका जहां वर्णन है, वहां उसका अभिप्राय इस विश्वके विराट् शरीरसे है। पुराणोंमें भी इस विराट् पुरुषका वर्णन है।

यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब वेदमें परमात्माका वर्णन ' अकायं, अव्रणं, अस्नाविरं ' (यजु. ४०।८) शरीररहित, जख्म आदि शारीरिक व्याधियोंसे रहित, नसनाडियोंके बंधनसे रहित, इस प्रकार आया है, तो उसीके शरीरका वर्णन करना क्या यह बात सिद्ध नहीं करता कि वेद विरुद्धत्वादि दोषोंसे युक्त है। इस शंकाका समाधान इस तरह हो सकता है कि वास्तवमें परमात्मा अशरीरी ही है, इसलिए उसके विश्वशरीरका उपरोक्त वर्णन अलंकाररूप ही समझना चाहिए। जिस प्रकार निराकार जीवात्माको भी शरीरी अर्थात् शरीरसे युक्त कहा गया है, उसी प्रकार यहां परमात्माके विषयमें भी समझना चाहिए।

इस प्रकार इन देवताओंका जब हमने आधिदैविक अध्ययन किया, तब हमारे सामने एक बड़ा रहस्य खुला, कि यह विश्व वस्तुतः एक महान् राज्य है, जिसमें विभिन्न खातों के मंत्रीगण अपना अपना विभाग सम्हाले हुए हैं। ये अपना कार्य बड़ी दक्षता एवं सावधानीके साथ करते हैं। कोई किसी विभागमें हस्तक्षेप नहीं करता। किसी प्रजातंत्र राज्यकी जो स्थिति होती है, ठीक वही स्थिति इस विश्व-राज्यमें है। इस राज्यमें भी विभिन्न देवताओंने विभिन्न विभाग सम्हाल रखे हैं। इस सूत्रके आधार पर जब हमने इन देवताओंका और इस विश्वराज्यका और गहरा अध्ययन किया, तो विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलकी जो कल्पना साकार हुई, वह इस प्रकार थी—

१ परब्रह्म— विश्वराज्यके राष्ट्रपति।
२ परमात्मा— उपराष्ट्रपति।
३ अदितिः— (प्रकृति, देवमाता)- विश्वराज्यके मंत्री एवं उपमंत्रियोंको निर्माण करनेवाली एक आदिशक्ति।

ध्येय

१ पुरुषः— विराट् पुरुष, समाज पुरुष और व्यक्ति पुरुष इन तीनोंमें शान्ति स्थापना ही मुख्य ध्येय है।

संसदध्यक्ष

१ सदसस्पतिः— विधान सभाके अध्यक्ष।
२ क्षेत्रपतिः— विधान सभाके उपाध्यक्ष और लघु समितिके अध्यक्ष।

मंत्रिमण्डल

१ शिक्षामंत्रालय

१ जातवेदाः अग्निः— शिक्षा मंत्री।
२ ब्रह्मणस्पतिः— उपशिक्षामंत्री।
३ बृहस्पतिः— उपशिक्षामंत्री या शिक्षा-सचिव।

रक्षा-मंत्रालय

४ इन्द्रः— रक्षामंत्री।
५ उपेन्द्रः— उपरक्षामंत्री।
६ रुद्रः— सेनाध्यक्ष।
७ मरुतः— सैनिक।

स्वास्थ्यमंत्रालय

८ अश्विनौ— स्वास्थ्यमंत्री (एक शस्त्रकर्म या शल्य चिकित्सामें प्रवीण और दूसरा औषधि चिकित्सामें प्रवीण)।
९ औषधिः— औषधियोंका व्यवस्थापक।
१० सोमः— औषधियोंका राजा।
११ अन्नम्— उत्तम खानपानकी व्यवस्था करनेवाला।
१२ गौः— राज्यमें उत्तम दूधकी व्यवस्था करनेवाला।

खाद्यमंत्रालय

१३ पूषा— खाद्यमंत्री।
१४ सूर्यः— शोधनमंत्री।
१५ सविता—
१६ आदित्यः—

अर्थमंत्रालय

१७ भगः— अर्थमंत्री।

उद्योगमंत्रालय

१८ विश्वकर्मा— उद्योगमंत्री।
१९ वास्तोष्पतिः— गृहनिर्माण-मंत्री।
२० त्वष्टा—शस्त्रास्त्रनिर्माणमंत्री।
२१ ऋभुः— कुटीरउद्योग-मंत्री।

जलयान-मंत्रालय

२२ वरुणः— यानमंत्री।
२३ चन्द्रमाः— मानस-समाधानमंत्री।
२४ पर्जन्यः— कृषिमंत्री।
२५ आपः—
२६ नद्यः—

जीवन-मंत्रालय

२७ वायुः— जीवनमंत्री।

प्रकाश-मंत्रालय

२८ विद्युत्— प्रकाशमंत्री।

स्त्री-मंत्रालय

२९ उषा— बालिका संरक्षणमंत्रिणी।

बाल-मंत्रालय

३० वेनः— बाल संरक्षणमंत्री।

गुप्तचर-मंत्रालय

३१ कः— गुप्तचरमंत्री।

वाहन-मंत्रालय

३२ अश्वः— वाहन व संचारमंत्री।

राष्ट्रगीत

३३ पृथिवी सूक्त—

इस प्रकार सब देवोंका विभाग है। यह विभाग हमने उन उन देवताओंके गुणोंके आधारपर किया है। दिग्दर्शन मात्रके लिए यहां कुछ प्रमाण देते हैं—

ज्येष्ठ ब्रह्म

यह विश्वराज्यका राष्ट्रपति है। जिस प्रकार किसी प्रजातंत्र राज्यमें राष्ट्रपतिके पास नाममात्रके अधिकार होते हैं, उसी प्रकार यह निर्विकार द्रष्टा है। पर इसका सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल पर अंकुश रहता है। इसका वर्णन वेदोंमें इस प्रकार है—

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमा सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः
स्कंभ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्येष्ठमुपासते।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये
तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे॥
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवाः
वृक्षस्य स्कंधः परित इव शाखाः॥
अथर्व. १०।७।१२,२२,२४,३८

" जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ स्थित हैं, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और वायु भी जिसमें स्थित हैं, वही सबका आधारस्तंभ है और वही आनन्दमय है।"

" जिसमें आदित्य, रुद्र, वसु, भूत, वर्तमान, भविष्य और सभी लोक प्रतिष्ठित हैं, वही सबका आधार है और वही आनन्दमय है।"

" जहां ब्रह्मज्ञानी और देव श्रेष्ठ ब्रह्मकी उपासना करते हैं, जो उनको प्रत्यक्ष जानता है, वह ज्ञाता ब्रह्मा कहलाएगा।"

" भुवनके मध्यभागमें जो बडा पूजनीय तत्त्व है, वही ब्रह्म है। जलके पृष्ठभागपरकी ज्योतिमें वह प्रकट होता है। जिसमें वृक्षमें शाखायें चारों ओरसे आश्रित रहती हैं उसी प्रकार इस ब्रह्ममें देवता आश्रित रहते हैं।"

परमात्मा

यह विश्वराज्यका उपराष्ट्रपति है और विश्वराज्यके संचालनमें परब्रह्मकी सहायता करता है। वह प्रकृतिके साथ मिलकर सृष्टिरचनाका कार्य करता है। परब्रह्मका स्वरूप निष्क्रिय है, जब कि परमात्माका स्वरूप सक्रिय है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

अकामोऽधीरो अमृतः स्वयंभूः
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः
आत्मानं धीरं अजरं युवानम्॥ अथर्व. १०।८।४४

" कामनारहित, बुद्धि देनेवाला, अमर, अपनी शक्तिसे रहनेवाला रस ग्रहणसे तृप्त होनेवाला, सर्वत्र व्याप्त, धैर्यवान्, जरारहित, सदा तरुण आत्मा है। उसे जाननेवाला मृत्युसे नहीं डरता।"

अदिति

यह वह शक्ति है, जिससे देवताओंका निर्माण होता है। इसीको वेदान्तदर्शनमें मायाके नामसे कहा गया है। 'द्युलोक, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र सब देव, पञ्चजन तथा जो कुछ होनेवाला है और हो चुका है, यह सब अदिति है।" सब देव अदितिके ही रूप हैं।

" ब्रह्म " अध्यक्ष है और " अदिति " प्रजा है। प्रजामेंसे प्रतिनिधि चुने जाते हैं और इन्हींकी सभा बनती है।

पुरुष

व्यक्ति, समाज और विराट् इन तीनों स्थानोंमें जो पुरुष स्थित हैं, उन सबका एक उद्देश्य है कि इन तीनों जगहोंमें शान्ति स्थापित करना। " करोडों सिर, पैर व हाथवाला एक मानवसमाजरूपी पुरुष सर्वत्र है।" वह तीनों कालोंमें रहता है। समाजमें रहनेवाले ज्ञानी, शूर, वैश्य और कारीगर या शूद्र इस समाज पुरुषके सिर, बाहू, पेट और पांव हैं। सब मानवोंका मिलकर एक शरीर है, अतः शरीरमें जिस प्रकार अङ्गोंमें सहकार होता है, उसी प्रकार इस मानवसमाजमें भी मानवोंका परस्पर सहकार होना चाहिये।

इसी प्रकार विराट्पुरुषकी भी एक देह है, जिसमें सूर्य, चन्द्र आदि देवगण अङ्ग बने हुए हैं। " इस विराट्पुरुषमें चन्द्रमा मन, सूर्य, आंख, इन्द्र और अग्नि मुंह, वायु प्राण, द्यु सिर, पृथिवी पांव और दिशायें कान हैं।"

इस विराट्पुरुष और व्यक्तिपुरुषमें सहकारको बताकर मनुष्यसमाजमें भी उसीकी शिक्षा देना वेदका ध्येय है।

सदसस्पति और क्षेत्रपति ये दोनों विश्वसंसदके क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष हैं। 'जो संसदका अध्यक्ष है, मैं उससे योग्य सलाह मांगता हूँ, वह मुझे योग्य सलाह देवे'। 'सदसः + पतिः' शब्द भी इसी बातका द्योतक है।

'सदसः' पद 'सदस्' शब्दके षष्ठी विभक्तिके एकवचनका रूप है। 'सदस्' का अर्थ होता है 'सभा'। अतः 'सदसः-पति' का अर्थ है सभापति या सभाध्यक्ष। इसका सहायक क्षेत्रपति है। इनमें सदसस्पति राज्यपरिषद्का अध्यक्ष है और क्षेत्रपति संसद् या लोकसभाका।

इसके बाद विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलका स्थान आता है। उसमें 'विद्याधनं सर्वधनप्रधानं' के न्यायसे अग्निका स्थान सर्वप्रथम है।

अग्नि

यह शिक्षामंत्री है। इसका कार्य ज्ञानका प्रसार करना व कराना है। वेदमंत्रोंमें आए हुए उसके विशेषणोंसे पता चलता है कि वह ज्ञानी है—

पावकः— ज्ञानसे लोगोंको पवित्र करनेवाला।
ऋषिकृत् (ऋ. १।३१।१६)— ऋषियोंका निर्माण करनेवाला।
कवितमः (३।१४।१)— सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी।
जातवेदाः (१।४४।१)— जिससे ज्ञान प्रकट हुआ है।
मेधिरः (१।३१।२)— बुद्धिमान्।
विद्वान् (१।१४५।५)— ज्ञानी।
सु-वेदः (४।७।६)— उत्तम ज्ञानी।
सूरिः (२।६।४)— बडा विद्वान्।
प्रचेताः (साम. १५१४)— विशेष ज्ञानी।
आर्यस्य वर्धनः (१५१५)— आर्य या श्रेष्ठ पुरुषोंको बढानेवाला।
ऋषिः (१५१९)— ज्ञानी, मंत्रद्रष्टा।

ये समस्त विशेषण यह सिद्ध करते हैं कि अग्निका कार्य ज्ञानका प्रसार करके लोगोंको ज्ञानी बनाकर उन्हें पवित्र करना है।

'ब्रह्मणस्पति' और 'बृहस्पति' इसकी सहायता करते हैं। ब्रह्मका अर्थ ही ज्ञान है। पुराणोंमें बृहस्पतिको देवोंका ज्ञानगुरु बताया है।

इन्द्र

यह रक्षामंत्री है। यह सदा आर्योंकी रक्षामें तत्पर रहता है। हमेशा शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित रहता है। यह लोहेका टोप पहनता है और उसपर जरीकी पगडी बांधता है, इसीलिए इसे वेदोंमें 'शिप्री' कहा है। यह 'अद्रि-वः' अर्थात् पहाडोंमें रहता है। पहाडोंपर किले बनाकर उनमें रहता है। अथवा यह गुरिल्ला अर्थात् पर्वतीय युद्धमें भी बडा प्रवीण है। हमेशा वज्रको हाथमें धारण किये रहनेके कारण यह 'वज्र-हस्त' कहलाता है। यह लोक कल्याण करता है। यह बडा वीर है, इसलिए (जनुषा अभ्रातृव्यः) जन्मसे ही शत्रु-रहित है। इसका एक कारण और भी है कि यह 'अशत्रुः' है अर्थात् स्वयं भी किसीसे बिना कारण शत्रुता नहीं करता। इसके कतिपय विशेषण इस प्रकार हैं—

वावृधानः (साम. १४११)— अपनी शक्तिसे बढने-वाला है।
वृषभः (१३६१)— बैलके समान सशक्त।
वज्रबाहुः (१४२६)— वज्रके समान कठोर भुजाओं-वाला।
वीर्यैः वृद्धः (१४८७)— पराक्रमसे महान्।
महिषः तुविशुष्मः (१४४६)— भैंसेके समान पुष्ट और शक्तिमान्।

इस प्रकार वह बलवान् है और सबपर शासन करता है। पर वह स्वयंकी शक्तिसे ही महान् है, किसी दूसरेकी शक्तिकी सहायतासे वह शक्तिमान् या महान् नहीं है। वह 'अयुध्य' है, उसके साथ युद्ध करना कोई आसान काम नहीं। क्योंकि वह 'दुश्च्यवन' अर्थात् अपने स्थानसे एक कदम भी हिलनेवाला नहीं है। वह शत्रुओंके किले तोडनेवाला, वज्रके समान कठोरवाला और युद्धमें विजयी होकर शत्रुओंको नष्ट करता है। इन्द्रके ये उपरोक्त वर्णन इस बातके प्रमाण हैं कि जिस देशका राज्य ऐसे बलशाली वीर रक्षकके हाथमें रहेगा, वह देश कभी भी दास या अवनत नहीं हो सकता।

उपेन्द्र अर्थात् विष्णु, रुद्र और मरुत् भी इसीके समान बलशाली हैं। रुद्रका नाम भी 'रुद्र' इसीलिए है कि वह शत्रुओंको रुलाता है। निरुक्तकार यास्कने 'शत्रूणां रोद-यिता' कहकर रुद्रका निर्वचन किया है। मरुत् भी 'मर + उत्' हैं अर्थात् मरतेदमतक उठ उठकर लडने-वाले हैं। इस प्रकार विश्वराज्यका रक्षामंत्रालय श्रेष्ठ वीरोंके आधीन है।

अश्विनौ

ये जुडवें हैं। ये दोनों अपने चिकित्सा कर्ममें बहुत कुशल हैं। वेदोंमें इनकी कार्य कुशलताका अनेक जगह वर्णन है। इन्होंने शल्यक्रियाके अनेक अपूर्वकाम किए हैं। खेल राजाकी पुत्री विश्पलाकी टांग टूट जानेपर उसकी लोहेकी टांग लगाना, अन्धे कण्वकी आंखें ठीक करना, च्यवनको बूढेसे

जवान बनाना ये सब इनकी चिकित्साकी विलक्षणता बताते हैं। कायाकल्पका सिद्धान्त आज प्रायः सर्वमान्य हो गया है। कई पाश्चात्य डॉक्टरोंने कायाकल्पपर प्रयोग भी किए और उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि उनकी उमर २०-२० वर्ष कम होगई। अश्विनौ भी कायाकल्प करते थे। इनकी औषधयोजना और शस्त्रक्रियाके सम्बन्धमें वेदोंमें निम्न वर्णन है—

गां पिन्वतं— गायको दुधारु और पुष्ट बनाते हैं।

अर्वतः जिन्वतं— घोडोंको वेगवान् बनाते हैं।

वीरं वर्धयतं— पुत्र या सन्तानोंको शक्तिशाली बनाते हैं।

च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः— बूढे च्यवन ऋषिको फिर तरुण बनाया।

अपरिताय कण्वाय चक्षुः प्रत्यधत्तम्— अन्धे कण्व को नई आंखें प्रदान कीं।

विश्पलायै आयसीं जघां प्रत्यधत्तम्— विश्पलाकी लोहेकी टांग लगाई और उसे चलने फिरने योग्य बनाया।

इस प्रकार अश्विनी देवोंका वर्णन है। गौः, ओषधि, सोम आदि देवता अश्विनौकी इस कार्यमें सहायता करते हैं और इस प्रकार विश्वराज्यका स्वास्थ्यमंत्रालय सुचारुरूपसे चलता है।

पूषा, सूर्य, सविता

ये तीनों लोगोंका पोषण करते हैं। 'पुष्-पोषणे' पोषण करना इस धातुसे पूषा शब्द बना है। सूर्यकी किरणोंसे पोषण प्राप्त होना स्पष्ट और सर्वमान्य सिद्धान्त है ही। 'सूर्य किरणोंमें स्नान करनेसे हृदयके रोग और पीलिया दूर होते हैं' (ऋ. १।५०।११)। सूर्यमें आरोग्यसंवर्धनके संपूर्ण साधन हैं। उन साधनोंसे वह सब रोग दूर करता है। जो इसकी शरणमें जाता है, वह कभी रोगके आधीन नहीं हो सकता।

भग

यह अर्थमंत्री है। भगका अर्थ ही ऐश्वर्य है। अतः विश्व-राज्यका सारा ऐश्वर्य भगके अधिकारमें रहता है। यह सबको गाय, घोडे, धन, ऐश्वर्य आदिसे युक्त करता है। उसका वेदने इस प्रकार वर्णन किया है—

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ऋ. ७।४१।३

"हे भग देव! तू नेता है, हमारा संचालक है। तेरे पासका ऐश्वर्य शाश्वत है, हमेशा रहनेवाला है। तू हमें भी ऐश्वर्य देकर सुरक्षित कर। गाय, घोडे प्रदान कर हमें भाग्यवान् बना। हम वीरपुत्रोंसे युक्त हों, ऐसी कृपा कर।"

उषा

उषाके रूपमें वेदोंने एक आदर्श स्त्रीका वर्णन किया है। यह एक उत्तम पुत्री, उत्तम पत्नी और उत्तम नेत्री है। यह सबसे पहले उठती है और सबको उठाती है। यह गृहिणीका कर्तव्य है कि वह सबेरे सर्वप्रथम उठे, फिर घरको स्वच्छ करके दूसरोंको भी उठाये। वह "चित्रा" है, हमेशा रंग-बिरंगे परिधानोंसे सजी रहती है। कोई भी स्त्री मलिन या दीन वेशभूषा धारण न करे। वह दिव्यव्रतोंका पालन करती है। उसे वेदमें "दिवः दुहिता" (द्युलोककी पुत्री) कहा है। वह लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त करती है। वह "भुवनस्य पत्नी" अर्थात् संसारका पालन करनेवाली होनेके कारण सबके कर्मोंका निरीक्षण करती रहती है। यह सूर्यकी पत्नी है। यह इतनी आदर्श है कि ऋषि भी इसकी स्तुति या प्रशंसा करते हैं। इसका कार्यक्षेत्र केवल घरतक ही सीमित नहीं है, अपितु यह रथमें बैठकर सर्वत्र संचार करती है। इसपर कोई कुदृष्टि नहीं डाल सकता, क्योंकि यह वीर है, रणनीतिमें कुशल है। "यह अपने साथ अन्य देवों-को लेकर शत्रुओंके किलोंपर आक्रमण करती है और उनका विध्वंस करती है।"

इस प्रकार वेदने उषाके रूपमें एक वीर, धीर, सबला, उत्तम पत्नी, पुत्रीका चरित्र-चित्रण किया है। इससे वैदिक-कालमें स्त्रियोंकी स्थितिका सही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार अन्य मंत्रीगण भी अपना कार्य सुचारुरूपसे बिना किसी छलकपटके करते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार संक्षेपमें हमने अपनी योजनाकी रूपरेखा प्रस्तुत की। जब हमने "दैवत-संहिता" के प्रथनका निश्चय किया, तो हमें कई विद्वानोंने यह लिखा कि वेदोंका वर्तमान-रूप एक शाश्वतरूप है, अनादिकालसे वेद इसी रूपमें चले आए हैं, अतः उसके वर्तमानरूपको विकृत करना उचित नहीं। हमने उनसे यही नम्र निवेदन किया कि जब ऋषियोंके अनुसार आर्षेय संहिता पहले बन चुकी है तो देवताओंके अनुसार "दैवत संहिता" बनानेमें क्या आपत्ति है। हमने मंत्रके छन्दों, स्वरों या पदोंमें कोई परिवर्तन नहीं किया, न मंत्रोंमें हमने अपनी ओरसे कुछ मिलाया ही। हां, इतना

अवश्य किया कि जो चारों वेदोंमें पुनरुक्त मंत्र आए हैं, उनको हमने एक ही बार लिया है। हमारे पास कई ऐसे पत्र आए थे, जिनमें लेखकोंने हमें सुझाया कि चारों वेदोंकी एक पुस्तक बना दी जाए, तो अत्युत्तम होगा। इस सुझावका हमने स्वागत किया और देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका एक ग्रंथमें संग्रह कर दिया। इस ग्रंथको प्रकाशित करते हुए हमने समय-समय पर विद्वानोंसे सलाह भी ली। हम उन विद्वानोंके आभारी हैं, जिन्होंने अपनी सलाह देकर हमारा मार्ग प्रदर्शन किया।

इस 'दैवतसंहिता' की कुछ अपनी भी विशेषतायें हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्र आदि देवोंके चारों वेदोंके मंत्र एक जगह आ जानेके कारण वेदानुसंधानकर्ताओंको बडी सुविधा हो गई है। उन्हें अब चारों वेद टटोलनेकी जरूरत नहीं।

(२) इस संहितामें विश्वराज्यकी जो कल्पना हमने प्रस्तुत की है, वह अपूर्व है।

(३) मंत्रोंके स्वरोंकी शुद्धता पर बहुत ध्यान दिया गया है। इसको प्रकाशित करते समय हमें उन विद्वानोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, जिन्हें वेद कण्ठस्थ हैं। अतः स्वर-विषयक दोषोंकी संभावना कम या नहींके बराबर ही है।

(४) वेदोंमें देवताओंके वर्णनके रूपमें सब प्रकारका ज्ञान दिया है। अतः उन देवताओंके गुणधर्मोंका परिचय हमें विशेष मिले, इसलिए हमने देवतावार मंत्रोंका वर्गीकरण किया है।

(५) हमने यथासंभव यही प्रयास किया है कि पुस्तकका कलेवर बडा न हो। इस दृष्टिसे हमने मंत्रोंका मुद्रण दो कालमोंमें किया है।

(६) दैवत संहिताके अन्तमें परिशिष्टके रूपमें हमने अन्य संहिताओंके भी मंत्र दिए हैं। इससे संहिताओंके तुलनात्मक अध्ययनमें पर्याप्त आसानी होगी।

इस प्रकार दैवतसंहिताका मुद्रण हमने किया है। इसमें हमें जिन जिन विद्वानोंसे सलाह या अन्य प्रकारकी सहायता मिली है, हम उनके आभारी हैं। इस "दैवत-संहिता" के मुद्रण-कार्यमें "श्री पं. मनोहरजी विद्यालंकार चावडीबाजार, दिल्ली" ने ३८००) रु. प्रदान देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पाठक इस हमारे प्रयत्नका हार्दिक अभिनन्दन करेंगे, ऐसी आशा है। इसके साथ ही वेद-विद्वानोंसे हमारा नम्र निवेदन है, कि इस ग्रंथमें जो दोष या न्यूनता उनकी दृष्टिमें आए, हमें सूचित करनेकी कृपा करें, ताकि आगामी संस्करणमें उस दोषका परिमार्जन कर सकें।

निवेदनकर्ता,

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल
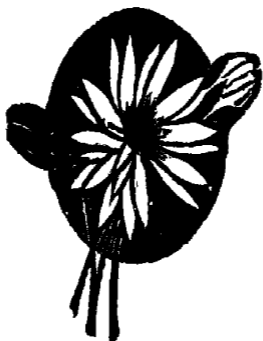
चारों वेदोंका सुबोध अनुवाद

वेद एक है

हमारे धर्मका मुख्य ग्रंथ वेद है। यह वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ऐसे चार भागोंमें विभक्त है। इन चारों भागोंका मिलकर वेद एक ही होता है, अतः कहा है—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देवो नारायणोऽनान्यः। महाभारत

'वेद एक ही है, देव नारायण भी एक ही है, प्रणव भी सर्व वाङ्मयरूप एक ही है।'

एक ही ईश्वर है और धर्मग्रंथ भी एकही वेद है। एक ही ईश्वरके अनेक नाम हैं और इसीतरह एकही वेदके चार भाग हैं। देखिये—

वेदका स्वरूप

१ पादबद्ध मंत्रोंका संग्रह ऋग्वेद है। इसमें देवताओंका गुणवर्णन है।

२ गद्य मन्त्रोंका संग्रह यजुर्वेद है। इसमें यज्ञयागोंका वर्णन है।

३ पादबद्ध मंत्रोंके गायनोंका संग्रह सामवेद है। इसमें उपासना है।

४ मनःशान्ति देनेवाला अथर्ववेद है। अ-थर्वका अर्थ शान्ति है, गतिरहितता है। मनको आध्यात्मिक शान्ति देनेवाला यह वेद है।

इस तरह चारों वेदोंके मन्त्रसंग्रहका स्वरूप है। ये चार विभाग एक ही वेदराशीके हैं। देवताओंका गुणवर्णन देखकर देवताके विषयमें आदरयुक्त भक्ति उत्पन्न होती है, और उनके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके तथा उन गुणोंको अपने अन्दर बढानेका निश्चय उपासकके मनमें होता है। इस प्रकारके अनुष्ठानसे मनुष्य अपने अन्दर देवत्व स्थापन करने लगता है और वह अनुष्ठान योग्य रीतिसे होने पर वह देव बनता है। मनुष्यका राक्षस न बने, परंतु मनुष्यका देव बने यह वेदका आदेश है।

यद् देवा अकुर्वंस्तत् करवाणि। श. प. ब्रा.

'जैसा देवोंने किया वैसा मैं करूंगा' और मैं देवत्व प्राप्त करूंगा। यह वैदिक धर्मीय उपासकोंकी इच्छा सदा रहती है। मनुष्योंको देवत्व प्राप्त करनेके मार्गसे वेद ले जाता है, कदापि राक्षस बननेके मार्गसे नहीं ले जाता, यह वेदका महत्वपूर्ण उत्तम मार्गदर्शन है।

राक्षस--मनुष्य--देव

'राक्षस-मनुष्य-देव' ये मानवोंकी तीन अवस्थाएं हैं। मनुष्य कुमार्गसे 'राक्षस' बनता है और सन्मार्गसे 'देव' बनता है। निश्चयसे मनुष्य शीघ्र देव बने, यह शिक्षा वेद देता है।

देवताओंके गुणोंका वर्णन ऋग्वेदमें है, शुभ कर्म करनेका अर्थात् यज्ञ करनेका आदेश यजुर्वेदमें है, शुभगुणोंके मंत्रोंका गायन उपासनाके साधन रूपमें करनेका विषय सामवेदमें है, और मनकी शान्ति अथर्ववेदके मंत्रोंसे मिलती है। इस प्रकार यह वेद मानव मात्रको सच्ची शान्तिका मार्ग योग्य रीतिसे बताता है। मानव मात्र इस वेदके बताये मार्गसे चले, तो उसको सब प्रकारसे उत्तम आनंद प्राप्त हो सकता है।

व्याधिशमनार्थ यज्ञ

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते। श. प. ब्रा.

'ऋतुओंकी संधिमें व्याधियां होती हैं इसलिये ऋतुसंधियोंमें यज्ञ किये जाते हैं।' यज्ञ व्याधियोंको दूर करते हैं और मानवमात्रको आरोग्यका आनंद देते हैं। ऋतु-परिवर्तनमें व्याधियां उत्पन्न होती हैं इस कारण व्याधियोंका शमन करनेवाली औषधियोंके चूर्णका गौके घी के साथ

हवन करनेसे व्याधियां दूर होतीं हैं और आरोग्य सबको प्राप्त होकर आनन्द सबको मिलता है। इस प्रकार यज्ञ सबको आरोग्य देता है। यह आरोग्य एकको मिलता है, और दूसरेको नहीं ऐसा नहीं। वायुके अन्दरके दोष दूर हुए तो शुद्ध वायुका जो सेवन करेगा वह आरोग्य युक्त हो सकता है। इस तरह वेदकी यज्ञविधि सबका हित करनेवाली है।

यज्ञ किसी एक स्थानपर होता है, पर उसका काम वायु शुद्ध होनेसे सब लोगोंको होता है। इसी प्रकार वेदका ज्ञान सबको लाभदायक होता है, इस विषयमें मनुस्मृतिने भी कहा है, देखिये—

वेदका ज्ञान

> सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
> सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥
>
> मनुस्मृति

'१ सेनापतिका सेनासंचालनका कार्य, २ राज्य चलानेका कार्य, ३ न्यायदानका न्यायाधीशका कार्य, तथा ४ सब लोगोंके आधिपत्यके विविध कार्य जो राष्ट्रशासनमें आवश्यक होते हैं, ये सब कार्य, वेदरूपी शास्त्रको जाननेवाला विद्वान् अच्छीतरह कर सकता है।'

अर्थात् वेदको जाननेवाला शत्रुपर सेना लेकर किस तरह हमला करना चाहिए यह जान सकता है, वेदके इन्द्रसूक्त और मरुत्सूक्तोंके अध्ययनसे यह ज्ञान उसको मिल सकता है, राज्य चलानेके विविध कार्य वेदके विश्वेदेवा देवताके सूक्तोंके अध्ययनसे ज्ञात हो सकते हैं। इसी तरहसे अन्यान्य राष्ट्रके चलानेके कार्य करनेका ज्ञान वेदके अनेक सूक्त दे सकते हैं। नारद स्मृतिमें भी कहा है—

> पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः।
> अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य धनदस्य च ॥
>
> नारद स्मृति

'महा बलवान् राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और कुबेर इन देवोंके रूप धारण करता है। राजा क्रुद्ध होने पर अग्निका रूप धारण करता है, शत्रुपर आक्रमण करके उसका पराभव करनेके समय वह इन्द्रका रूप धारण करता है, आनन्द प्राप्त होनेपर वह चन्द्रमा जैसा आनंद कारक बनता है, शत्रुको या दुष्टोंको पकडकर उसको दण्ड देनेके समय वह यम जैसा बनता है और धनका दान करने के समय वह कुबेरके समान होता है।'

देवताओंके वर्णनमें राजाके गुण

इस तरह वैदिक देवताओं द्वारा राजाके ये गुण बताये हैं। संपूर्ण विश्व एक अखंड विराट् राज्य है और इस विराट् राज्यके अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, यम, कुबेर इत्यादि देवता मंत्री गण ही हैं। वेदका योग्य रीतिसे अध्ययन करने से, वेदके अन्दरकी अनेक देवता विश्वराज्यके मंत्रीगण ही हैं ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

विश्वराज्य चलानेवालोंके गुण

ये देवता विश्वमें अपना अपना कार्य यथायोग्य रीतिसे करती रहती है, विश्वराज्यको ये ही चलाती हैं। इस कार्यके करनेमें ये सुस्ती नहीं करती, आलस्य नहीं बताती, रिश्वतखोरी नहीं करतीं, अपना कार्य छोडती नहीं हैं, दूसरोंके कार्यमें बाधाएं उत्पन्न नहीं करती। ऐसे अनेक शुभगुण इनमें हैं। ये शुभगुण मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं।

राज्य चलानेवालोंमें ये शुभगुण रहने चाहिये। वेदकी देवताओंमें ये शुभगुण हैं। इनका अध्ययन मानवोंको करना चाहिये और अपने अन्दर ये शुभगुण बढ जांय इसलिये यत्न करना चाहिये।

इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है, अग्नि अन्धेरेमें मार्ग बताता है, वायु जीवन देता है, सूर्य जीवन दीर्घ करता है, चन्द्रमा औषधियोंका पोषण करता है, पृथिवी सबको आधार देती है। इसी तरह अन्यान्य देवताएं अन्यान्य कार्य कर रही हैं और विश्वराज्य चला रही हैं और प्राणियोंका जीवन आनंदित कर रहीं हैं और सब विश्वभरमें इनका यह कार्य अखंड रीतिसे चल रहा है।

तीन स्थानोंमें वेदका भाव

विश्वका राज्य चलानेवाले ये अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवताएं हैं। इसके अनुसार राष्ट्रका राज्य चलानेवाले अनेक मंत्री राष्ट्रमें होते हैं। इसीके अनुसार व्यक्तिके शरीरमें एक छोटा राज्य है यह राज्य यहांकी इन्द्रियां चलाती हैं। इस रीतिसे इन तीनों स्थानोंमें वेद मंत्रका अर्थ देखा जाता है।

इसको समझानेके लिये यहां एक तालिका हम देते हैं। वह तालिका ऐसी है—

विश्वमें	राष्ट्रमें	व्यक्तिमें
अग्नि	वक्ता	वाणी
इन्द्र	वीर, शूर	वीर्यवीर्य
चन्द्र	शान्त, आनंदी	मन
वायु	प्राणी	प्राण

इस तरह शरीरमें, राष्ट्रमें और विश्वमें वेदमंत्रका आशय देखनेकी रीति है। इसीको क्रमसे आधि दैविक, आधि भौतिक और आध्यात्मिक भाव दर्शन कहते हैं। तैंतीस देवताएं, जो वेदमें हैं, वे सब आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें इस रीतिसे अपना भाव बताती हैं।

वेदके अर्थका स्पष्टीकरण इस प्रकार करनेसे तीनों क्षेत्रोंमें वेदमंत्रका अर्थ देखा जा सकता है। अग्निके मंत्र इस प्रकार ज्ञानपरक अर्थ बतायेंगे, इन्द्र देवताके मंत्र शूर-वीरताका भाव बतायेंगे और अन्यान्य देवताएं अन्यान्य भाव बतायेंगी और वेदके अर्थको अपनी अपनी पद्धतिसे प्रकाशित करेंगी।

इस प्रकार वेदमंत्रका अर्थ देखनेकी पद्धतियां ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें तथा भाष्यकारोंके भाष्योंमें बतायी हैं। विचार करके इस पद्धतिसे वेद मंत्रोंके अर्थ देखने चाहिये और अर्थ समझनेका यत्न करना चाहिये।

ये वेदमंत्रोंके अर्थ इस तरह अनेक प्रकारके होते हैं। इससे घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये अर्थ निश्चित नियमोंके अनुसार ही होते हैं और किसी प्रकारकी कोई अनियमितता इनमें नहीं होती है। जो नियमोंके अनुसार होता है उसमें कोई कठिनता नहीं होती। नियम जाननेसे उसके समझनेमें सुगमता होती है।

वेदमंत्रोंके अनुवादका प्रकाशन

इस रीतिसे वेदमंत्रोंके अनुवादका स्पष्टीकरणके साथ प्रकाशन हम, जनताको सुखसे वेदके अर्थका ज्ञान प्राप्त हो, इसलिये कर रहे हैं। नीचे लिखे ग्रंथ तैयार हैं—

१ ब्रह्मविद्या

ब्रह्मज्ञान, परमात्माका सामर्थ्य, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पापकी सामर्थ्यका आत्मिक बलसे प्रतिकार, ज्येष्ठ ब्रह्म, गुह्य अध्यात्म विद्या, सूत्रात्मा, एकके अनेक नाम, एक पूजनीय ईश्वर, ईश्वरका नामस्मरण, अपने अन्दरकी शक्ति, प्राणका प्राण, ब्रह्माण्ड देह, जीवन महासागर, अमृतदाता, एक देवकी शक्ति, महान् शासक, जगत्का एक सम्राट्, व्यापक श्रेष्ठ देव, विश्वशकटका संचालक, सर्व साक्षी, भुवनोंमें श्रेष्ठ, ईश्वरका मित्र, प्रातःकालमें ईश्वरकी प्रार्थना, एक ही उपास्य, सर्वव्यापक ईश्वर, सर्वाधार प्रभुका ध्यान, रक्षक देव, अन्तर्यामी ईश्वर, विश्वम्भर, आत्मज्योति, जीवात्माका परमात्मामें प्रवेश, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी, विजय प्राप्ति।

२ मातृभूमि और राज्यशासन

मातृभूमिका वैदिक राष्ट्रगीत, आध्यात्मज्ञान और राष्ट्र-भक्ति, राष्ट्रसभा और उसकी अनुमति, राजाके रक्षक, राजाका कर्तव्य, राजाकी स्थिरता, राष्ट्रके अभ्युदयकी वृद्धि, राजा और राजाके निर्माण करनेवाले, राजाका चुनाव, विजयी राजा, सोलहवां भाग रूप कर, दुष्टोंका नाश, शत्रुसेना संमोहन, शत्रुकी घबराहट, विजयकी प्राप्ति, युद्धनीति, विजयकी प्राप्ति, अभ्युदयकी दिशा, बलकी प्राप्ति, स्वशक्ति का विस्तार, बलसंवर्धन, बंधनसे मुक्ति, युद्ध साधन, रथ, दुंदुभी, शूर वीर।

३ गृहस्थाश्रम

पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू, पतिके गुण, वधूपरीक्षा, विवाहका मंगल कार्य, वरकी योग्यता, वैदिक विवाहका स्वरूप, सद्व्यवहारसे धन कमाओ, गोरक्षण करो, स्त्री सूत काते, पाणिग्रहण, चोरीका अन्न न खा, विवाहका समय, बडोंका संमान, आदर्श पति और पत्नी, स्त्रीपुरुषका परस्पर प्रेम, दोनों एक विचारसे रहें, पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनावे, सौभाग्य संवर्धन, स्त्रीके पातिव्रत्यका रक्षण, काम, कामा-ग्निका शमन, वीर पुत्रकी उत्पत्ति, गर्भधारणा, रोगजन्तु नाश, पुंसवन, देवोंका गर्भमें प्रवेश, रक्तस्राव बंद करना, संतानका सुख, घरमें बालक, प्रजाका पोषण, रमणीय घर, गौ, धन, अन्न और बल। सौ को अन्न देनेवाली गाय, संगठन, यज्ञ, ऋणरहित होकर रहना, भाग्य प्राप्त करना, दुष्ट स्वप्न हटाना।

४ आरोग्य और दीर्घायुष्य

प्राणका संरक्षण, प्राणविद्या, दीर्घायु प्राप्तिका उपाय,

स्वावलंबिनी प्रजा, वाणी, सुख, शापका दुष्परिणाम, ईर्ष्या निवारण, अमर शक्तिकी प्राप्ति, ज्ञान और कर्म, बलदायी अन्न, कल्याणकी प्राप्ति, निर्भय जीवन, आत्मरक्षण, कष्टोंको दूर करना, द्रोह न करना, सत्यकी विजय, समृद्धि, वर्चः प्राप्ति, दुष्टोंका दमन, चोर और डाकुओंको दूर करना, रोगनिवारण, यक्ष्मनाश, विषनाश, ज्वरनाश, कुष्ठनाश, गण्डमाला दूर करना, रोगकृमि नाश, संधिवात दूर करना, क्षेत्रीय रोग दूर करना; क्लेशोंको दूर करना, हस्तस्पर्शसे रोगनिवारण ।

५ मेधाजनन, संगठन और विजय

मेधाजनन, तपसे मेधाबुद्धिकी प्राप्ति, मनका बल बढाना, बंधनसे मुक्ति, परस्परकी मित्रता बढानी, ब्राह्मण धर्मका आदेश, हृदयरोग और कामिला रोगको हटाना, वनस्पति पृश्निपर्णी, अपामार्ग, पिप्पली, रोहिणी, कुष्ठ औषधी, लाक्षा, शमी, सूर्यकिरण चिकित्सा मणिबंधन, जंगिड, शंख, प्रतिसर मणि, शरीरकी रचना, अञ्जन, पाशोंसे मुक्तता, ब्रह्मचर्य, स्वर्ग और ओदन, हृदयके दो गीध, तृष्णाका विष, सुरक्षा, समृद्धि, गाढ निद्रा, प्रथम वस्त्र परिधान, ईर्ष्या निवारण, क्षत्रिय, युद्धकी रीति, विजय, दुष्टनाश, मधुविद्या, संगठन, मातृभूमि, मातृभूमिके भक्तोंका सहायक ईश्वर, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, बाह्य शक्तियोंसे अन्तःशक्तियोंका मेल, कृषिसे सुख, गौ, अश्व, वृष्टि, जल, जलचिकित्सा, वाणिज्यसे धनप्राप्ति ।

ये पुस्तकें हिंदी–गुजराती–मराठी ऐसी ३ भाषाओंमें पृथक् पृथक् हैं इस प्रत्येक पुस्तकमें ८ सौ से हजार मंत्रोंका अर्थ भावार्थ और स्पष्टीकरण मुद्रित हुआ है । केवल हिंदी, मराठी और गुजराती जाननेवाला भी इनको अच्छी तरह समझ सकता है ।

ग्राहक बन जाइये

आप इसके ग्राहक बन जाइये । इससे वेदके अगले पुस्तक छापनेमें आर्थिक सहायता हमें मिल जायगी और वे पुस्तक जल्दी छप सकेंगे । आगे इसी तरहके बीस पुस्तक छपने हैं । जैसे ये बिकते जायगे वैसे उस धनसे अगले पुस्तक मुद्रित होते जायगे । इसलिये आप इन ग्रंथोंको शीघ्र खरीदिये और हमें सहायता पहुंचाइये । बडी कृपा होगी ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल
पारडी जि. सूरत